चन्दामामा
मई १९७५
1
रु०

Photo by: MADAN GOPAL

PRE-HISTORIC

राम और श्याम
—स्मगलरों को यों हाथ पकड़ते हैं!

सैर करने निकले राम श्याम,
देख रास्ते में गड़बड़ हुए हैरान!

"चोर नहीं... है ये स्मगलरों का सरदार, राम नाम है इसका जालगुलाम!"
"इंस्पेक्टर तुम फौरन इधर आओ, स्मगलरों को पकड़कर जेल ले जाओ."

स्मगलर डरकर वहां से भागे,
पैर उनके फिसले, वो न जा पाये आगे.

"पैरों के नीचे उनके, मैंने पॉपिन्स पैकेट थे फेंके, इन्हें खोल के आओ हम सब खायें मज़े से."

PARLE
POPPINS

मैं गंदे पैरों से भला प्लूटो को अन्दर कैसे लाता?
अन्तर्राष्ट्रीय गुणमान के अनुरूप निर्मित सैनेटरीवेयर और वॉल टाइल
HT-HSI 8124 R
VITREOUS
हिन्दुस्तान सैनेटरीवेयर एण्ड इण्डस्ट्रीज़ लिमिटेड
२ वेलेसली प्लेस, कलकत्ता ७००००१
सोमानी-पिल्किंगटन्स लिमिटेड
कसार, रोहतक, हरियाना
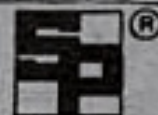
चन्दामामा

संस्थापक : नागिरेड्डी

संचालक : 'चक्रपाणी'

इस महीने की बेताल कथा "तीन शिकारी" उद्बोधक कथा है!

मानव परिस्थिति वश बदल जाते हैं। कठिनाइयों के वक़्त उन्हें दूसरों से जो सहायता प्राप्त होती है, उसे वे लोग कठिनाइयों के दूर होते ही भूल जाते हैं। उन्हें लगता है कि सुख उन्हें अपने व्यक्तित्व के कारण ही प्राप्त हुए हैं। रामचन्द्रजी की मदद से वाली का वध करके सुखभोगों में डूबनेवाला सुग्रीव आख़िर रामचन्द्रजी की बात तक को भूल गया था!

वर्ष : २७ मई १९७५ अंक : ११

मित्र-भेद

[२२]

धूर्त की कहानी

कोसल की राजधानी अयोध्या नगरी में सुरथ नामक एक प्रसिद्ध राजा था। उसके आधीन सैकड़ों सामंत राज्य थे।

एक बार वन-विभाग के अधिकारी ने राजधानी पहुँच कर राजा से यों बताया: "महाराज! विंध्यक नामक एक विद्रोही के नेतृत्व में सारी जंगली जातियों ने बलवा किया है। उनके विद्रोह को दबाने में मैं अपने को असमर्थ पाता हूँ। इसलिए आप ही इस कार्य को संभाल लें।" इस पर राजा ने विद्रोहियों को दबाया और उन्हें दण्ड देने के लिए अपने मंत्री बलभद्र नामक एक प्रज्ञाशाली को नियुक्त किया।

बलभद्र के चले जाने के बाद ग्रीष्म ऋतु के अंतिम दिनों में एक दिगंबर सन्यासी अयोध्या में आ पहुँचा। उसने सब की जन्मकुडलियाँ बनाकर उनका भविष्य बताया, शकुन के फल बताये, अच्छे मुहूर्त रखे, गुप्त नाम बताकर चन्द दिनों में ही उसने नगरवासियों की प्रशंसा प्राप्त की।

राजा ने भी उस सन्यासी के बारे में कई बातें सुनीं। उसके मन में कुतूहल पैदा हुआ। इस पर सन्यासी को अपने महल में निमंत्रण देकर पूछा—"महानुभाव! मैंने सुना है कि आप मन की बात कह सकते हैं। क्या यह बात सच है?"

"मैंने जहाँ-जहाँ जो कार्य किये हैं, आप उनका पता लगाइए तो आप ही को स्वयं विदित होगा।" इन शब्दों के साथ सन्यासी ने अपने कार्यों का परिचय दे राजा को चकित किया।

अंतिम पृष्ठ का चित्र

राजा ने सन्यासी के वास्ते राजमहल में ही रहने के लिए एक मठ प्रदान किया और प्रति नित्य उसके मुँह से उपदेश सुना करता था।

एक दिन शाम को सन्यासी ने राजमहल में पहुँचकर कहा–"राजन, मैं आप को एक शुभ समाचार सुनाने आया हूँ। देवताओं ने मुझसे अत्यंत अनुरोध किया, इस पर आज प्रातःकाल में अपनी भौतिक देह को मठ में छोड़कर अपने सूक्ष्म शरीर के साथ स्वर्ग में गया। थोड़ी ही देर पहले पृथ्वी को लौटकर अपने शरीर में प्रवेश किया है। देवताओं ने मुझसे आप के कुशल-क्षेम पूछा।"

यह बात सुनने पर राजा विस्मय में आ गया। उसने पूछा–"महात्मा! आप स्वर्गलोक में कैसे पहुँचे?"

"महाराज! यह तो मेरे लिए खेल के समान है! मैं प्रति नित्य स्वर्ग में आया-जाया करता हूँ।" सन्यासी ने कहा।

राजा ने अपने भोलेपन तथा सन्यासी की अनेक शक्तियों को प्रत्यक्ष देखने व सन्यासी के द्वारा किये गये असंख्य महान कार्यों को सुने रहने के कारण भी, उसकी बातों में जल्द विश्वास किया। उस दिन से राजा ने राज-काज में दिलचस्पी न ली, रानी की भी उपेक्षा करके सदा-सर्वदा सन्यासी के निकट बैठकर स्वर्गलोक के समाचार सुनता रह गया। इससे राज्य की तथा राजपरिवार की हालत अस्त-व्यस्त हो गई।

इस बीच जंगली जातियों के विद्रोह को दबाकर बलभद्र अयोध्या को लौट आया। उसने राजधानी में प्रवेश करते ही जान लिया कि राजा सन्यासी के हाथ का खिलौना बन गये हैं तथा दरबार में नहीं जाते हैं और मंत्रियों का परामर्श करना तक भुला दिया है। वह सीधे राजमहल में पहुँचा। दरबार को निर्जन देखा। एक कमरे में राजा तथा सन्यासी एकांत में बैठे दिखाई दिये। उस वक़्त

सन्यासी राजा के कानों में कोई गुप्त वार्ता सुना रहा था। राजा प्रफुल्लित वदन से सन्यासी की बातें ध्यान से सुन रहा था।

मंत्री ने प्रथम दृष्टि में ही सारी बातें भांप लीं। वह महाराजा के समक्ष साष्टांग दंडवत करके बोला–"महाराजा की जय हो!" राजा ने बलभद्र से विद्रोह के बारे में एक भी बात नहीं पूछी, बल्कि यही पूछा–"मंत्री महोदय! क्या आप इस महात्मा को जानते हैं?"

"इन महात्मा को कौन नहीं जानता? इन्होंने अनेक महा पुरुषों को अपने शिष्य बनाये हैं। मैंने यह भी सुना है कि ये अकसर स्वर्ग में आया-जाया करते हैं, क्या यह सच है?" बलभद्र ने पूछा।

"इसमें संदेह की बात क्या है?" राजा ने कहा। सन्यासी मंत्री के मुँह से अपनी भारी प्रशंसा सुनकर फूला न समाया, अपने प्रति और अधिक विश्वास जमाने के ख्याल से बोला–"यदि मंत्री महोदय के मन में यह कुतूहल हो तो वे स्वयं देख सकते हैं।" इन शब्दों के साथ मठ में जाकर उन्होंने भीतर से कुंड़ी चढा ली। चंद मिनट बाद मंत्री ने राजा से पूछा–"ये महात्मा स्वर्ग से कब लौटनेवाले हैं?"

"जल्दबाजी क्यों? वे अपनी भौतिक देह को मठ में त्यागकर सूक्ष्म देह के साथ स्वर्ग में पधारे हैं।" राजा ने कहा।

"यदि यह बात सच हो तो आप ईंधन और आग मंगवा लीजिए। मैं मठ को जला देता हूँ।" मंत्री ने कहा।

"ऐसा किसलिए?" राजा ने आश्चर्य में आकर पूछा।

"महाराज! आप पूछते हैं, किसलिए? इस लकड़ी जैसे शरीर के जल जाने पर वे अपने सूक्ष्म शरीर के साथ ही आप के यहाँ आया करेंगे। इससे सारे विश्व में उनका यश फैल जाएगा। इस संदर्भ में मैं आप को नागकुमार की कहानी सुनाता हूँ।" यों मंत्री वह कहानी सुनाने लगा:
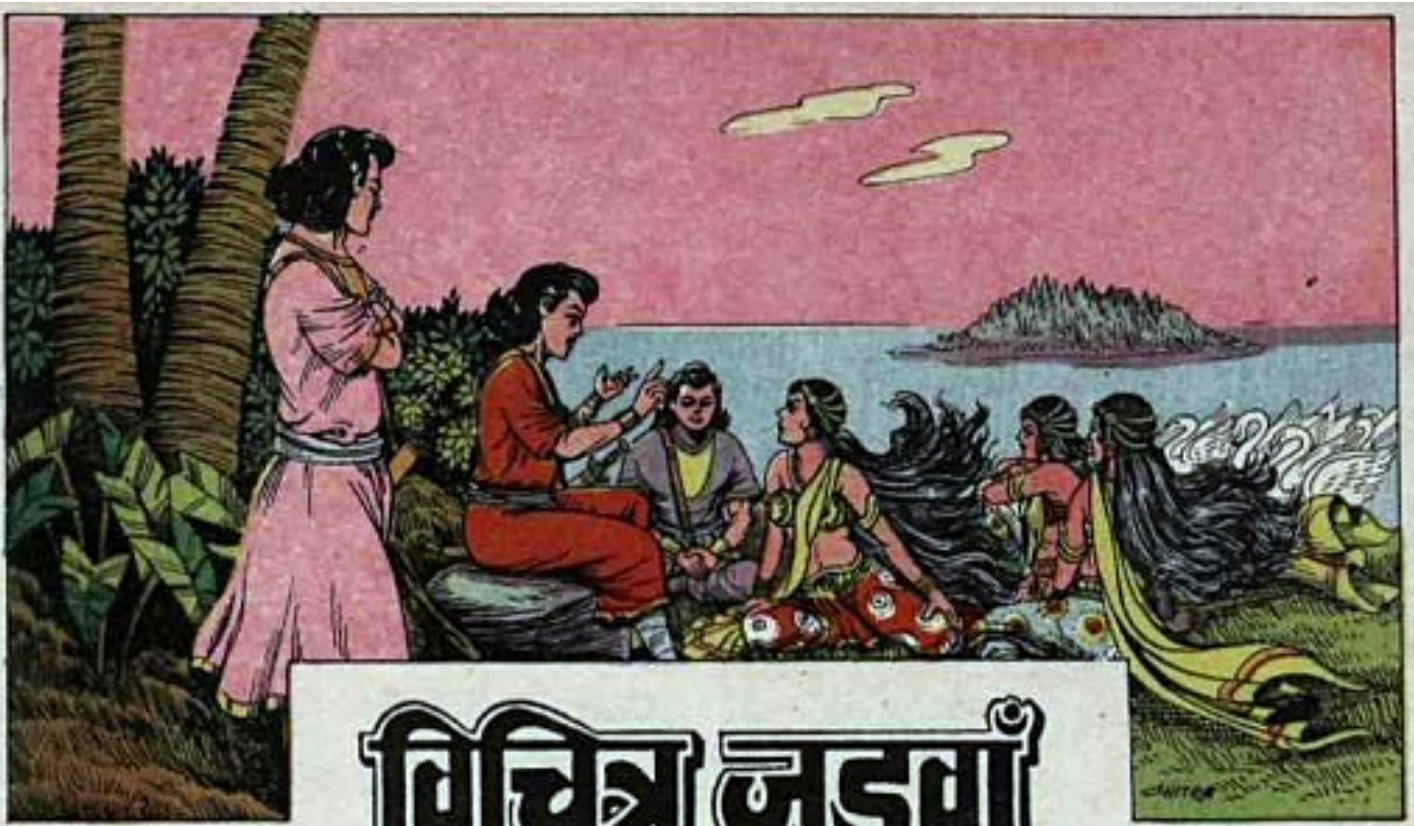
विचित्र जुड़वाँ

[१०]

[राक्षस ने दाढ़ीवाले से मिलकर यह समाचार जान लिया कि जुड़वें भाइयों ने उसे धोखा दिया। उधर सुहासिनी की मदद से संध्याकुमार तथा निशीथ को पूर्व रूप प्राप्त हुए। राक्षस के भूगर्भगृह में प्रवेश करने के लिए जुड़वें भाई योजना बनाने लगे। इसके बाद–]

जुड़वें भाइयों को जब यह मालूम हो गया कि उनके पास दाढ़ीवाले के द्वारा प्राप्त जो भस्म एवं अंजन हैं, वे राक्षस के भूगर्भ गृह में काम नहीं देनेवाले हैं, तब वे आगे के उपाय के बारे में परस्पर चर्चा करने लगे। उस चर्चा के दौरान उनके मन में एक संदेह पैदा हुआ– "यह राक्षस दुनिया भर के जुड़वों का पता लगाकर बराबर उन्हें पकड़ लाता है, पर आज तक उन्हें पकड़ने का प्रयत्न उसने क्यों नहीं किया? आख़िर इसका कारण क्या होगा?"

दूसरे दिन जुड़वें भाई जब राजकुमारियों से मिले, तब उदयन ने अपना यह संदेह उनके सामने प्रकट किया, वे भी आश्चर्य में आ गईं और बोलीं–"तुम सच कहते हो! आज तक हमें भी यह संदेह न हुआ। शायद एक कारण को लेकर उसने तुम

लोगों को छोड़ दिया होगा, लेकिन......" सुभाषिणी ने बीच में ही अपना वाक्य समाप्त किया।

"संकोच मत करो, कहो! हम सुनना चाहते हैं। अगर तुम्हारा संदेह सच हो तो हम लोग भी सतर्क रह सकते हैं। इससे हमारा लाभ ही होगा।" निशीथ ने प्रोत्साहित किया।

"बात वैसे कुछ नहीं, यदि जुड़वों के अवयवों में कोई दोष या तृटि हो तो वे राक्षस के लिए बलि देने योग्य नहीं हो सकते! बलि देते समय राक्षस इसकी जाँच करता है। लेकिन हमें तुम लोगों में कोई तृटि दिखाई नहीं देती, इसीलिए तुम लोगों से यह बात कहने में मुझे संकोच हो रहा था।" सुभाषिणी ने कहा।

सुभाषिणी के मुँह से ये शब्द सुनते ही जुड़वें भाई बहुत प्रसन्न हुए और एक साथ बोल उठे–"तुम्हारा संदेह बिलकुल सही है!"

इसके बाद उदयन ने राजकुमारियों को सविस्तार बताया कि जन्म के साथ उनमें दृष्टि-दोष कैसे आ गया था और वे दोष दाढ़ीवाले की कृपा से कैसे दूर हो गये।

वे लोग यों बात कर ही रहे थे, तभी राक्षस के आने की सूचना देनेवाला बवंडर उठा। तत्काल राजकुमारियाँ सरोवर के भीतर चली गईं। मगर बेचारे जुडवें भाई इस बार राक्षस के चंगुल से बच न पाये। उदयन भस्म निकालकर अपने तथा अपने भाइयों पर छिड़कने ही वाला था, तभी अचानक राक्षस प्रत्यक्ष हो उठा और उन तीनों को अपनी मुट्ठी में बंद किया।

जुड़वें भाई मन ही मन डर के मारे कांप रहे थे, पर प्रकट रूप में हिम्मत बांधे हुए थे। साथ ही राक्षस की पकड़ में से बचने का उपाय सोच रहे थे; तभी राक्षस ने गरजकर उनसे पूछा–"तुम लोग कौन हो? मेरे इस गुप्त प्रदेश में

कैसे आ गये हो? सच बताओ, वरना इसके पूर्व आये हुए लोगों की जो हालत हो गई है, वही तुम्हारी भी होगी!"

इसके उत्तर में उदयन ने कहा—"यह बात सच है कि यहाँ पर पहुँचना कठिन ही नहीं बल्कि खतरे से खाली नहीं है। मगर यहाँ आने के बाद ही हमें यह बात मालूम हो गई। फिर भी हम लोग जान पर खेलकर यहाँ आये हैं, इसलिए हमारे मुँह से पहले सच्ची बात सुन लो और बाद को तुम जो कुछ करना चाहते हो, करो।"

"हाँ, तुम्हारी बातों से ऐसा लगता है कि छोटा मुँह, बड़ी बात! मेरे छोटे भाई को तुम्हीं लोगों ने दगा दिया है न? पहले यह बताओ कि तुम लोग यह जानकर भी कि यहाँ पर पहुँचना खतरे से खाली नहीं, फिर भी जान पर खेलकर तुम लोग चोरी-चोरी यहाँ पर क्यों आये हो?" राक्षस ने गरजकर पूछा।

"यही हमारी भूल थी। लेकिन हम चोरी-चोरी नहीं आये हैं, वैसे चुपके से आने की हमें ज़रूरत भी नहीं है। जानते हो, हम किसलिए आये हैं?..." उदयन असली बात कहने ही जा रहा था, तभी उसे ये शब्द सुनाई पड़े—"और किसलिए? मुझे धोखा देने के लिए ही! बोलो, चुप क्यों हो गये?"

जुड़वें भाइयों ने झट उस दिशा की ओर देखा, जिस दिशा से ये शब्द सुनाई

दिये। तब उन्हें वह राक्षस अपनी ओर बढ़ते दिखाई दिया, जिसे चकमा देकर उन लोगों ने दाढ़ीवाले के पास भेजा था।

राक्षस ने वहाँ पर पहुंचते ही अपने भाई से कहा–"भैया, अब मैं इनकी बाबत देख लेता हूँ, तुम अपना वक़्त इनके पीछे नाहक़ बरबाद न करो, शिकार खेलने चले जाओ!"

अपने छोटे भाई के मुँह से ये शब्द सुनते ही बड़ा राक्षस मन ही मन बड़बड़ाने लग.–'यह सब कोई कहानी जैसी लगती है? ये लोग शायद मेरे छोटे भाई के परिचित मालूम होते हैं। इसलिए वही इन लोगों की बात देख लेगा।" यों कहते वह पुनः गीध की आकृति में फुर्र से उड़कर आसमान के रास्ते चला गया।

इसके उपरांत राक्षस जुड़वें भाइयों को साथ ले उस महल में उन्हें ले गया, जिसका वह पहरा देता है। उन्हें बिठला कर बोला–"बच्चो, सुनो! तुम लोगों ने दाढ़ीवाले को चकमा दिया, मुझे भी दगा दिया, अब मेरे भाई को धोखा देना चाहते हो! लेकिन बेचारे तुम लोगों की चाल चल न पाई। तुम ने दाढ़ीवाले को चकमा देकर उसके यहाँ से जो अंजन, भस्म और तौलिया हड़प लिया है, सब को मेरे आगे रख दो। बाद को बात कर लेंगे।"

बेचारे! जुड़वें भाई कर ही क्या सकते थे? लाचार होकर उन सारी चीज़ों को वहाँ पर रख दिया, इस पर राक्षस ने कहा–"मैं जमाने से यहाँ पर पहरा दे रहा हूँ, मगर मेरी आँख बचाकर एक भी आदमी आज तक मेरे महल के भीतर घुसने न पाया। जो भी आया, मेरे हाथों में पड़कर शिला प्रतिमा बनकर रह गया। लो, देखो! वे सब अपने दुर्भाग्य का कैसे परिचय दे रहे हैं? जिस दिन तुम लोगों ने मुझे दगा दिया, उस दिन से भारी चिंता में पड़कर मैंने भर पेट खाना

तक नहीं खाया। मुझे भूख सता रही है। महीने भर का भोजन तुम लोगों का नाम लेकर कर लेता हूं।" यों तौलिया बिछाकर उसने वांछित भोजन की कामना की।

अपना पेट भर लेने के बाद राक्षस ने जुड़वें भाइयों को भी उनमें से थोड़े फल दिये, उनके खाने के बाद राक्षस ने उन्हें एक रस्से से बांध दिया, पानी पीने के लिए तालाब की ओर चल पड़ा।

थोड़ी ही देर में राक्षस तीन दोनों में पानी ले आया और उसको जुड़वें भाइयों को पीने के लिए दिया।

जुड़वें भाइयों ने सोचा कि राक्षस बड़े ही स्नेह के साथ उन्हें खिला-पिला रहा है, यह सोचकर उसके हाथ से पानी लेकर पी लिया। पानी के कंठ तक पहुँचते-पहुँचते तीनों तीन शिला प्रतिमाएँ बन गये।

उनके शिला रूप को प्राप्त होते देख राक्षस ठहाका मारकर हंस पड़ा जिससे सारा महल गूंज उठा। इन नयी शिला प्रतिमाओं को अपने पहरा देनेवाले द्वार के पार्श्व में ही रखा।'

इधर यों जुड़वें भाई तीनों आफ़त में फँस गये। उधर महाराजा दानशील तथा रानी पद्ममुखी चिंता के मारे घुलते जा रहे थे।

राजा ने जिस दिन अपनी जुड़वीं पुत्रियों को खोज लाने के लिए जुड़वें
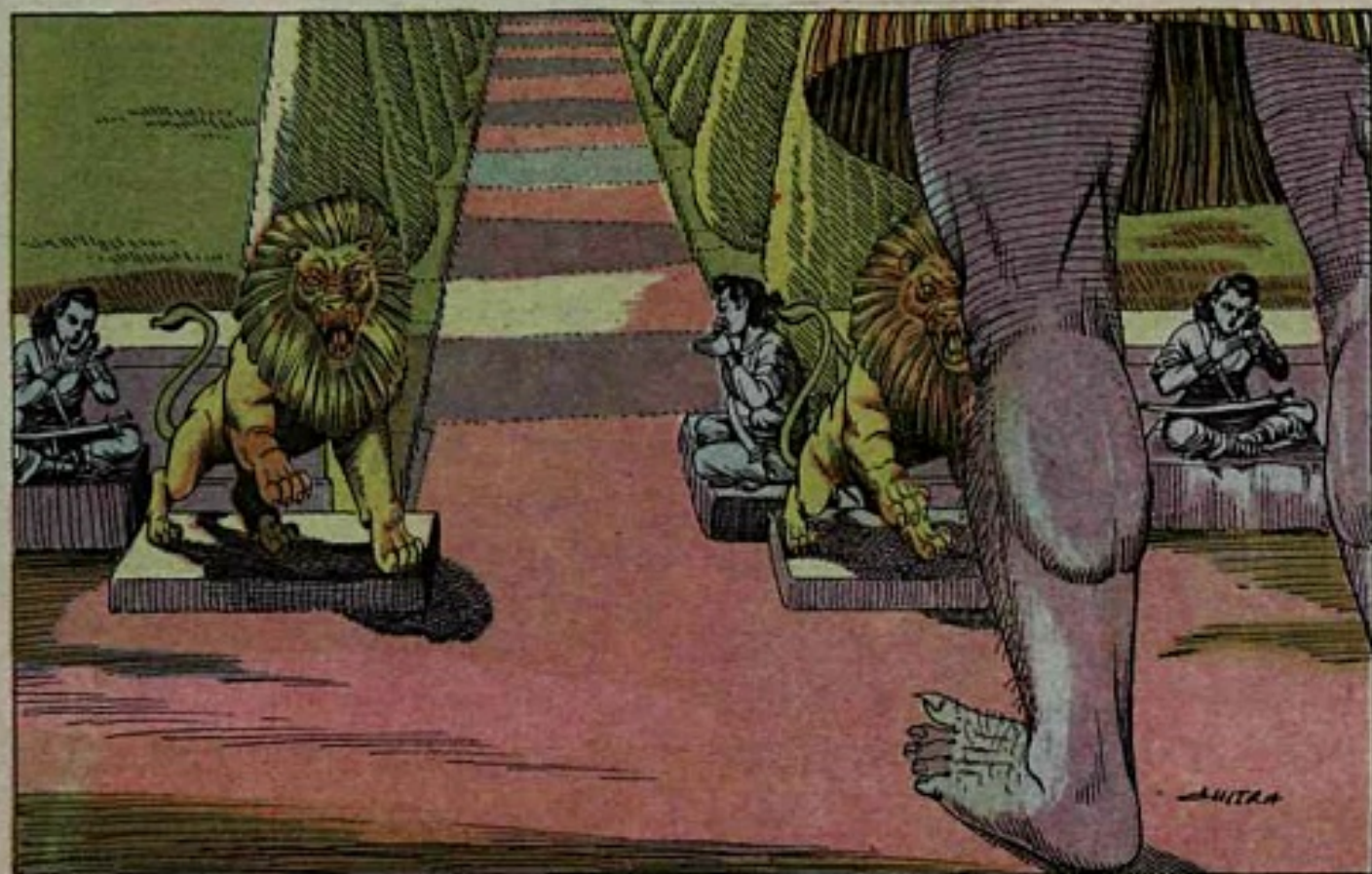
भाइयों को घोड़ों के साथ रवाना किया, उसी दिन दुर्ग की ऊपरी मंजिल पर एक संदर व विचित्र कमरा बनवाया और उस कमरे में बैठकर देखने से चारों ओर जहाँ तक दृष्टि जाती है, साफ़ दिखाई देता है। राजा चौबीसों घंटे उस कमरे में बैठकर देखता ही रह जाता था।

जुड़वें भाइयों के राजकुमारियों की खोज में गये पांच वर्ष व्यतीत हो चुके थे, पर अब तक उनका पता नहीं था। इससे दिन प्रति दिन राजा की विकलता बढ़ती गई। फिर भी मन के किसी कोने में आशा बची रही, इसीलिए जब-तब दरबारी ज्योतिषियों को बुलवाकर उनकी सलाह लिया करता था। ज्योतिषी निश्चित रूप से यह कहा करते थे कि राजकुमारियाँ कहीं जीवित हैं और कभी न कभी अवश्य लौट आयेंगी, अत: निराश होने की कोई जरूरत नहीं है। इस कारण राजा अपने मन को ढाढ़स बंधाये दिन बिताने लगा।

एक दिन मुँह अंधेरे राजा रोज की भांति अपने कमरे में बैठे दूर क्षितिज की ओर देख रहा था, उस धुंधली रोशनी में तीर की भांति वेग के साथ दो घोड़े राजमहल की ओर बढ़ते दिखाई दिये। उन घोड़ों के रंग, उन पर मनुष्यों की आकृतियाँ तथा घोड़ों पर बंधे काले झंडों को देख राजा चीख उठा और तलवार अपनी छाती में भोंकने को हुआ। संयोग की बात थी कि उस चीख को सुनते ही पल भर में परिचारक घटना स्थल पर दौड़े आये, राजा को उस खतरे से बचाया, फिर भी राजा बेहोश हो गिर पड़ा।

थोड़ी ही देर में राजा का होश में आ जाना और उन घोड़ों का वहाँ पर पहुँचना, ये दोनों घटनाएँ एक साथ घटित हुईं।

वे घोड़े वे ही थे जिन्हें राजा ने जुड़वें भाइयों को स्वयं देकर भेज दिया था। फिर भी उन पर सवार हो आये हुए

लोग जुड़वें भाई न थे, बल्कि राजा के सेवक थे।

राजा बड़ी आतुरता के साथ उनकी ओर दौड़ पड़ा और पूछ बैठा– "राजकुमारियाँ कहाँ? जुड़वें भाई कहाँ? ये घोड़े तुम्हें कहाँ मिले?"

"महाराज! क्षमा कीजिए! राजकुमारियों तथा जुड़वें भाइयों की बाबत हम कुछ नहीं जानते। हम दोनों गाँव, शहर, जंगल और पहाड़ खोजते गये, आखिर हमें एक मैदान में ये घोड़े दिखाई दिये, इन्हें पहचानने के बाद हमने राजकुमारियों और जुड़वें भाइयों की बड़ी खोज की, पर उनका पता न चला। तब हम यह सोचकर लौट पड़े कि शायद वे लौट आये हैं, वरना कम से कम यह समाचार तो आपको सुना सकेंगे। इस ख्याल से हम आ गये!" सेवकों ने निवेदन किया।

सारी बातें सुनकर राजा फिर दुख में डूब गया। उसके मुँह से अनायास ही ये शब्द निकल पड़े–"मेरी ऐसी क़िस्मत!"

सब लोगों ने राजा को सांत्वना दी। जब वह थोड़ा आश्वस्त हुआ तब उन दोनों सेवकों को निकट बुलाकर कहा– "अबे मूर्खो! राजकुमारियों को ढूँढ़कर साथ ले आना था, तुम यूँ ही क्यों लौट आये? उनकी खोज में गये जुड़वें भाइयों की न मालूम क्या हालत हो गई है? बेचारे, वे किस आफ़त में फँस गये हैं? वरना अब तक उनका पता क्यों नहीं लगता? मैं भी उनकी राह देख थक गया हूँ। अब मुझसे सहा नहीं जाता, क्या तुम्हारे शीघ्र लौटने की भी आशा है? न मालूम तुम्हारे लौटने तक मेरा हाल क्या होगा? अच्छी बात है! फिर जाओ, खोजकर राजकुमारियों और जुड़वें भाइयों को ले आओ।" इन शब्दों के साथ राजा ने उनको फिर भेज दिया।

सेवकों के लौटने का समाचार धीरे-धीरे अंतःपुर तक फैल गया। रानी निराश हो पुनः पागल हो गई।

(और है)

तीन तीरंदाज़

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया, पेड़ से शव उतार कर कंधे पर डाल सदा की भांति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन, तुम बड़े ही प्रतिभाशाली हो, मगर याद रखो, प्रतिभा की कोई सीमा नहीं होती। उदाहरण स्वरूप मैं तुम्हें सव्यसाची की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने के लिए सुनो।"

बेताल यों कहने लगा: एक गाँव में एक तीरंदाज़ था जो अपने दोनों हाथों से बाण चलाता था। वह धनुर्विद्या में ऐसा प्रवीण था कि उड़नेवाले पक्षियों को दोनों हाथों से मार गिरा देता था। इसी वजह से उसको 'सव्यसाची' की उपाधि मिली। सब कोई सव्यसाची की धनुर्विद्या की तारीफ़ करने लगे, इसे देख उसने सोचा कि इस बात का पता लगा ले कि

बेताल कथाएँ

उससे भी बड़ा तीरदाज़ कोई है कि नहीं। इसी विचार को लेकर वह घर से निकल पड़ा। बड़ी दूर की यात्रा करके आखिर वह एक गाँव में पहुँचा। वहाँ पर लोगों की भीड़ जमा थी।

सव्यसाची ने कारण पूछा तो लोगों ने बताया कि दशहरे का उत्सव मनाया जा रहा है और उस अवसर पर कुशल तीरंदाज़ अपनी धनुर्विद्या का प्रदर्शन कर रहे हैं। वह भी अपनी धनुर्विद्या का प्रदर्शन करने के लिए आगे बढ़ा।

लोगों की भीड़ के बीच खाली मैदान में एक जगह एक घंटा लटकाया गया था। वहाँ पर एक अंधे आदमी को लाया गया। उसके हाथ में धनुष और बाण थे। घंटा बजाया गया। तुरंत अंधे ने धनुष पर बाण चढ़ाकर ध्वनि की दिशा में निशाना लगाया और तीर छोड़ दिया। तीर घंटे से जा लगा। इकट्ठी हुई भीड़ ने हर्ष ध्वनि की।

सव्यसाची ने अंधे से मिलकर पूछा– "भाई, मैं तो दोनों हाथों से बाण चला सकता हूँ। उड़नेवाले पक्षियों को गिरा सकता हूँ। मगर तुम मुझसे भी बड़े तीरंदाज़ हो! मैं तुम्हारे जैसे ध्वनि के आधार पर निशाना साध नहीं सकता।"

इस पर अंधे ने कहा–"हाँ, तुम ठीक कहते हो। इसीलिए मुझ को 'शब्दवेदी' कहते हैं। इस विद्या का प्रदर्शन दृष्टि रखनेवाले लोग अपनी आँखों पर पट्टी बांध कर करते हैं, मगर मेरे जैसे जन्मांध होकर शब्दवेदी बना हुआ व्यक्ति दूसरा नहीं है। मेरा निशाना भी अचूक होता है।"

"मैं तुम जैसे महान धनुर्धारियों की खोज करते सारे देश घूम रहा हूँ। धनुर्विद्या में अनेक प्रकार की कलाएँ भी हो सकती हैं न?" सव्यसाची ने कहा।

"चलो, मैं भी तुम्हारे साथ चलता हूँ।" शब्दवेदी ने कहा।

दोनों चल पड़े। जब वे धर्मपुरी के निकट एक जंगली रास्ते से गुजर रहे थे,

तब उन्हें एक विचित्र दृश्य दिखाई दिया। बांस की झुरमुठ की छाया में एक लूला बैठा हुआ था। वह अपने बायें पैर से धनुष पकड़कर मुंह से तीर खींचकर छोड़ रहा था। देखते-देखते वह तीर एक पेड़ पर स्थित कबूतरों के जोड़े से जा लगा। दोनों कबूतर ज़ीमीन पर आ गिरे।

उस दृश्य को देख सव्यसाची विस्मय में आ गया और यह बात अंधे से कही। अंधे ने भी अचरज में आकर कहा–"यह तो हम दोनों से कहीं ज्यादा प्रवीण है।"

दोनों ने लूले के निकट जाकर उसकी विद्या की तारीफ़ की और कहा–"हमने लूले को तीर चलाते कहीं नहीं देखा। तुम्हारा निशाना बेजोड़ है।"

इसके बाद दोनों ने लूले को अपना-अपना परिचय दिया और अपनी शक्तियों का वृत्तांत भी सुनाया।

"मेरे जैसे पैरों से बाण चलानेवाला ढूंढे भी न मिलेगा। इसीलिए तुमने ऐसे तीरंदाज को कहीं नहीं देखा। मेरा निशाना अचूक होता है। तुम जैसे मेरे भी दोनों हाथ होते तो मैं दोनों पैरों तथा हाथों से भी बाण चला लेता।" लूले ने कहा।

इस पर सव्यसाची ने बाक़ी दोनों को लक्ष्य करके कहा–"हम तीनों धनुर्विद्या में प्रवीण हैं। मगर यदि हमारा कौशल दुनिया को मालूम न हो तो फ़ायदा ही क्या? इसलिए हम तीनों धर्मपुरी के महाराजा के पास जाकर अपनी-अपनी विद्याओं का प्रदर्शन करेंगे। इससे एक ओर हमें यश मिलेगा और दूसरी ओर पुरस्कार भी प्राप्त होगा।"

"यह बात तो सही है, लेकिन राजा के द्वारा प्राप्त होनेवाले पुरस्कार को हम लोग आपस में कैसे बांट ले? यह भी तो एक सवाल है!" लूले ने पूछा।

"हम तीनों बराबर बांट लेंगे। इसमें झगड़ा ही क्यों?" सव्यसाची ने सुझाया। पर इस सुझाव को लूले ने अस्वीकार किया। उसंने कहा–"हम लोग अपना

उसने निकट पहुँच कर कहा–"धर्मपुरी के महाराजा तुम तीनों को अलग-अलग पुरस्कार नहीं देंगे। इसलिए तुम लोगों को पहले ही इसका निर्णय कर लेना उचित होगा कि पुरस्कार की राशि आपस में कैसे बांट ले।"

सव्यसाची ने क्रोध में आकर कहा–"तुम हम लोगों के बीच मनमुटाव पैदा करना चाहती हो? तुम तो ऐसा कह रही हो कि मानों तुम्हारे राजा ने हमको अभी अभी पुरस्कार दे दिया है और उसे बांटने में हम लोग झगड़ा कर रहे हैं! चलो!"

भील युवती खिल खिलाकर हंस पड़ी। शब्दवेदी ने पूछा–"तुम हँसती क्यों हो?"

"बताऊँ, किसलिए? तुम तो अंधे हो! ये तो लूले हैं! हाथ-पैर रखनेवाला व्यक्ति तुम दोनों को लात मारकर पुरस्कार हड़पने की सोच रहा है! इसीलिए तुम तीनों अपनी अपनी हैसियत के मुताबिक़ निर्णय करने को तैयार नहीं हो।" भील युवती ने कहा।

इस पर लूले ने कहा–"तुमने ठीक बताया। हम अपनी हैसियत का निर्णय नहीं कर पा रहे हैं। तुम तो बुद्धिमती मालूम होती हो। तुम्हीं निर्णय करो कि हम में श्रेष्ठ कौन है? तुम्हारे निर्णय को हम मान लेंगे।"

अपना पुरस्कार अलग-अलग ले लें तो राजा मुझको ही बड़ा पुरस्कार देंगे। तुम दोनों हाथोंवाले तीरंदाज़ हो, जब कि मैं बिना हाथवाला!" लूले ने कहा।

"यह तुम क्या कहते हो? राजा तो मुझको ही बढ़िया पुरस्कार दे सकते हैं! तुम दोनों आँखोंवाले तीरंदाज़ हो, जब कि मैं अंधा तीरंदाज़ हूँ?" शब्दवेदी ने कहा।

इस विवाद से सव्यसाची खीझ उठा। उसने कहा–"चलो, हमारी विद्याओं की श्रेष्ठता का निर्णय स्वयं राजा ही करेंगे!"

उन लोगों के समीप में खड़ी एक भील युवती तीनों का वार्तालाप सुन रही थी।

"तुम तीनों अपनी अपनी विद्या का परिचय तो कराओ।" भील युवती ने पूछा।

इस शर्त को तीनों को स्वीकार किया। लूले ने पैरों में धनुष धरकर मुंह से बाण छोड़ दिया और उसी वक़्त पेड़ पर बैठने वाले पक्षी को गिराया। अंधे ने दूसरे पेड़ पर बैठे पक्षी को मार गिराया। तब सव्यसाची ने दोनों हाथों से दो तीर चलाकर उड़नेवाले दो पक्षियों को मार गिराया। भील युवती ने निर्णय किया कि सव्यसाची सब से बड़ा तीरंदाज़ है और शब्दवेदी का स्थान दूसरा है, तब वह युवती वहाँ से चलने को हुई।

इस पर लूले ने क्रोध में आकर कहा– "ठहर जाओ। तुम जंगल में जीनेवाली हो! धनुर्विद्या के बारे में जानती ही क्या हो? तुमने किस आधार पर यह निर्णय दिया? तुम्हारे इस निर्णय को हम स्वीकार नहीं कर सकते।"

"मेरे निर्णय को स्वीकार नहीं किया तो मेरा क्या बनता-बिगड़ता है? तुम्हीं लोगों ने फ़ैसला करने को कहा था। अब धनुर्विद्या के बारे में मैं जो जानती हूँ, उसे देखना चाहते हो? तुम अपने धनुष और बाण मेरे हाथ दे दो!" इन शब्दों के साथ भील युवती ने लूले के धनुष और बाण ले लिये।

इसके बाद उसने पेड़ की डाल पर बैठे चिड़ियों के एक जोड़े को दिखाकर कहा–"देखो, उस जोड़े के बीच कितनी जगह है!" इन शब्दों के साथ उसने धनुष पर बाण चढ़ाकर निशाना लगाया।

"क्या तुम उस प्रेमी पक्षियों के जोड़े को मार गिराओगी?" लूले ने पूछा।

"देखते रह जाओ!" यों कहते भील युवती ने तीर छोड़ दिया। वह तीर पक्षियों के जोड़े के बीच से सनसनाते चला गया। मगर पक्षी वहाँ से हिले तक न थे।

इस अपूर्व निशाने को देख लूला तथा सव्यसाची चकित रह गये। भील युवती

धनुष को लूले के हाथ देकर अपने रास्ते चली गई। शब्दवेदी ने भी यह समाचार सुना। तब तीनों तीरंदाज़ राजा के सामने अपनी धनुर्विद्या के प्रदर्शन करने का संकल्प त्याग कर वापस लौट गये।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा– "राजन, भील युवती ने अपनी धनुर्विद्या की कुशलता को साबित किया है न। उसने तीरंदाज़ों की प्रवीणता में अंतर क्यों बताया? तीरंदाज़ अपनी विद्याओं का प्रदर्शन राजा के समक्ष किये बिना क्यों चले गये? इन सवालों का जवाब जानते हुए भी न दोगे तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया– "भील युवती के निर्णय में कोई भूल नहीं है। वास्तव में सव्यसाची बाक़ी दोनों तीरंदाजों से श्रेष्ठ है। क्योंकि चाहे तो वह बाक़ी दोनों विद्याओं का अभ्यास कर सकता है। मगर बाक़ी दोनों उसके जैसे सव्यसाची नहीं बन सकते! अंधा व्यक्ति शब्द न करनेवाले लक्ष्य पर निशाना नहीं लगा सकता है। लूले ने विवश होकर पैरों तथा मुंह से बाण चलाना सीख लिया है। सव्यसाची को छोड़ शेष दोनों अच्छे निशानेबाज़ ज़रूर हैं, मगर श्रेष्ठ तीरंदाज़ नहीं। अब रही बात कि वे राजा के समक्ष अपनी विद्या का प्रदर्शन किये बिना क्यों चले गये? धनुष-बाण धारण न करनेवाली भील युवती भी धनुर्विद्या में ऐसी दक्षता रखती है, तो जंगल में तीरंदाज़ बनकर टहलने वाले भीलों की सामर्थ्य की बात क्या कही जाय? अपने नगर के समीप के जंगलों में ऐसे तीरंदाज़ों के होते, राजा अपरिचित न होगा। ऐसे राजा को प्रसन्न करना कठिन समझा होगा सव्यसाची और उसके साथियों ने। इसीलिए उन लोगों ने अपने प्रयत्न को त्याग दिया।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा। (कल्पित)

बुराई का नतीजा

एक शहर में सीतापति तथा लक्ष्मीपति नामक दो इत्र के व्यापारी थे। सीतापति ईमानदारी के साथ अच्छे क़िस्म के इत्र बेचा करता था, मगर लक्ष्मीपति लोभ में पड़कर मिलवाटी इत्र बेचता था। इसका नतीजा यह हुआ कि शनै शनै उसका व्यापार ठप्प हो गया। लक्ष्मीपति ने सीतापति को सलाह दी कि उसी के जैसे वह भी मिलावटी इत्र बेचे, पर सीतापति ने उसकी बात नहीं मानी।

लक्ष्मीपति ने सोचा कि सीतापति के पुत्र राजू को फालतू ख़र्च करने की आदत डलवा दे और उसके द्वारा सीतापति के व्यापार को ख़तम करा दे, इस ख़याल से वह सीतापति के पुत्र को धन देता गया। राजू वे रुपये लेता गया।

कुछ दिन बाद लक्ष्मीपति ने राजू से केवडे का इत्र लाने को कहा; राजू ने रुपये माँगे। लक्ष्मीपति ने रुपये दिये। राजू ने इत्र की बोतल ला दी।

एक दिन लक्ष्मीपति ने राजू से पूछा–"मैंने जो रुपये दिये, उन्हें क्या किया?"

"आपने मुझे जो रुपये दिये, वे सब मैंने अपने पिताजी के हाथ दिये।" अपनी चालकी को विफल देख लक्ष्मीपति हताश हो गया।

आजीविका

एक दिन आधी रात के वक़्त विनय अकेले खेतों की मेंडों से शहर की ओर जा रहा था, उसे एक दृश्य दिखाई दिया। एक पेड़ के नीचे एक चोर उस रात को चुराये हुए धन का हिसाब कर रहा था।

धन को देखते ही विनय दबे पाँव उस पेड़ की आड़ में जा पहुँचा। चोर का धन हड़पने की बात सोचने लगा।

चोर सारे रुपये एक थैली में डाल पेड़ से टिक कर बैठ गया और शीघ्र ही खुर्राटे लेने लगा। विनय ने भाँप लिया कि चोर गहरी निद्रा में है और वह अपना हाथ बढ़ाकर थैली लेने को हुआ। पर अचानक उसके हाथ पर मार पड़ी जिस से वह थैली को छोड़ आगे लुढ़क पड़ा।

चोर ने विनय का गला दबाते हुए गुस्से में आकर कहा—"अरे कमबख़्त! तुम चोरी करना तक नहीं जानते?"

"क्यों नहीं? अच्छी तरह से जानता हूँ।" चोर ने रुएँ से स्वर में कहा।

"तेरा सर! चोर कहीं चोरी का माल बाहर रखकर सोता है? तुम अगर सचमुच चोर होते तो मेरे हाथ नहीं लगते! लुक-छिपकर तुम्हारे इस ओर आते देख मैंने सोचा कि तुम भी एक चोर हो! और मेरे काम आओगे!" चोर ने कहा।

"तुम्हारे लिए और चोर की क्या जरूरत है?" विनय ने पूछा।

"मुझे अकेले को सारे काम स्वयं कर लेना मुश्किल होता है। मैं एक साथी की खोज में हूँ।" चोर ने जवाब दिया।

"फिर क्या? मैं भी तो आजीविका की खोज में मारा-मारा फिर रहा हूँ। मुझको अपना साथी बना लो न?" विनय ने कहा।

"तुम को? तुम इस पेशे के लिए बिलकुल बेकार हो।" चोर ने कहा।

आदित्य नाथ

"ऐसा मत कहो! जानते हो, मैं कितने ही लोगों को चकमा देकर अपने गाँव से भाग आया हूँ? मैंने कर्ज लिये, मगर एक भी कर्ज चुकाये बिना बचकर चला आया हूँ!" विनय ने कहा।

चोर ठठाकर हँस पड़ा। उसने पूछा—"यह भी कोई कमाल है? क्या वे सब तुम्हारी खोज करते न आवेंगे?"

"नहीं! दगा देने का मतलब तुम भाग आना समझते हो? ऐसी बात नहीं! कल मुझे सारे कर्ज चुकाने का दिन था। सब को अपनी युक्तियों से चकमा दिया। मैंने तीन लोगों को दगा दिया! तुम सुनोगे तो बेहोश हो जाओगे।" विनय ने अपनी कहानी सुनाई :

कल सवेरे में एक रास्ते से गुजर रहा था। एक नुक्कड़ को पार करते ही दुबला-पतला शास्त्री दिखाई दिया। उसको देखते ही मैंने अपना मुँह मोड़ लिया।

शास्त्री ने मुझको देख ही लिया। वह कंधा पकड़कर झकझोरते हुए गरज उठा—"अबे, कहाँ देखते हो? क्या मेरी ही आँखों में धूल झोंकना चाहते हो?"

मैंने ऐसा अभिनय किया, मानों शास्त्री को मैंने तभी देख लिया है। अचरज का अभिनय करते बोला—"ओह! आप हैं शास्त्रीजी! मैं भी इसी प्रकार का मकान बनवाना चाहता हूँ। मगर इसकी ऊँचाई तो बहुत कम है! कोई भी चोर आसानी से छत पर उछल सकता है!"

"अबे, तेरे लिए मकान भी चाहिए! पहले मेरे पचास रुपये दे दो! फिर मकान की बात सोच लो।" शास्त्री ने कहा।

"रुपये कहाँ जायेंगे? दे ही दूंगा। मेरी दूर की एक बूढ़ी रिश्तेदारिन हाल ही में मर गई, वह सारी जायदाद मुझे दे गयी है। मुझे जल्दी मकान बनवाना है; क्या इतनी ऊँचाई वाले मकान पर कोई छलांग मारकर उछल नहीं सकता?" विनय ने पूछा।

"असंभव है! कोई इतनी ऊँचाई तक उछल नहीं सकता।" शास्त्री ने कहा।

"आप का दिमाग तो खराब नहीं हो गया है न? मैं ही खुद उस मकान पर उछल सकता हूँ। चाहे तो पचास रुपये का दाँव लगाइए!" विनय ने भड़काया।

शास्त्री ने सोचा कि विनय हार जाएगा जिस से एक साथ सौ रुपये वसूला जा सकता है। शास्त्री ने मान लिया। विनय मकान पर उछलने को हुआ, नीचे गिरकर बोला—"दाँव में मैं हार गया हूँ। मुझे से आप को पचास रुपये मिलने हैं। आप ने मेरे पचास रुपये जीत लिये हैं। इसलिए पचास के पचास चुक गये!"

शास्त्री ने विनय की कलई पकड़कर डांटा—"यह तुम क्या कहते हो? पचास के पचास चुक गये कैसे?"

"बस! यही कहता हूं, पचास के पचास चुक गये।" विनय बोला।

शास्त्री गुस्से में आ गया। वह विनय को खींचकर गाँव के मुखिये के पास ले गया। मुखिया नकचढ़ा था। विनय उसके तुनक मिजाज से परिचित था। मुखिये को देखते ही वह पूछ बैठा—"सरकार, आप ही बताइये कि पचास के पचास चुक गये हैं न?" मुखिये ने खीझकर कहा—"चुक गये हैं! चले जाओ!"

"यह कैसे होगा जी!" शास्त्री कुछ और कहने को हुआ। मुखिया गुस्से में आकर बोला—"तुम्हारा दिमाग खराब तो नहीं हो गया है? मैं कहता हूं कि पचास के पचास चुक गये हैं? जाओ, फिर मेरी देहली पर क़दम मत रखो।"

विनय जबर्दस्ती शास्त्री को वहाँ से बाहर खींच ले गया और बोला—"मुखिये ने भी तो बताया है। उनको और चिढ़ायेंगे तो आप को कोड़ों की मार पड़ेगी।"

कोड़ों की मार की बात सुनते ही दुर्बल शास्त्री चीख उठा। विनय शास्त्री को उसके घर छोड़ आया। इस तरह उसका एक कर्ज चुक गया।

"मैंने जो दूसरा अनोखा कार्य किया है, उसे भी सुन लो। उसी दिन दुपहर को मैं अपने ऋणदाता एक बनिये के हाथ फँस गया। बनिये ने मेरा हाथ पकड़कर झंझोड़ा–"मैं तुम्हारी खोज में सारा गाँव छान रहा हूँ, मेरे सत्तर दे दो।"

"मैं भी उस सत्तर के वास्ते ही चल पड़ा हूँ। तुम सोचते हो कि तुम्हारे कमबख्त सत्तर रुपये मैंने अपने लिए खर्च किये हैं? लो, देखो, उस मकान के चबूतरे पर लेटे उस बूढ़े को मैंने वे सत्तर दिये हैं। उन्हें भी कहीं से सत्तर मिलने हैं। चलो, उन्हीं से पूछ ले!" विनय ने कहा।

चबूतरे पर बूढ़ा खाट पर गहरी नींद में डूबा था। दर्वाजा खटखटाने पर एक लड़की ने आकर द्वार खोला। विनय ने उस लड़की को बूढ़े को दिखाकर कहा–"सुनो, मैं जब भी पूछता हूँ, तो ये कहते हैं कि अभी तक सत्तर नहीं आये? क्या तुम जानती हो?"

"सत्तर क्या अस्सी आ गये हैं। कंजूस है, किसी को कुछ नहीं देता, उल्टे हम सब को तंग कर रहा है।" लड़की ने दर्वाजा बंद करते हुए कहा।

लड़की ने बूढ़े की उम्र के बारे में कहा था, पर बनिये ने सोचा कि वह रुपयों की बात कह रही है, क्योंकि उसका सारा ध्यान रुपयों पर केन्द्रित था।

"और क्या है? जो भी मिला, सारा धन छिपा रखा है। अस्सी मिले हैं तो तुम्हें ब्याज भी हाथ लगेगा। अच्छा, मैं चलता हूँ।" ये शब्द कहकर विनय ने चले जाने का अभिनय किया और फूलों के पौधों की झाड़ी के पीछे छुपकर देखने लगा कि क्या होनेवाला है!

बड़ी देर तक बनिया इस विचार से इंतज़ार करते बैठा रहा कि बूढ़ा जाग उठेगा, आखिर ऊब कर उसको थप थपाया। बूढ़े ने सोचा कि कोई बिल्ली या कुत्ता होगा। बनिये को ज़ोर से लात मारा। मगर वह नींद से जागा तक नहीं।

लात खाकर बनिया चबूतरे पर से नीचे गिरा। बनिये को बड़ा गुस्सा आया। उसने उठकर चबूतरे पर रखी लाठी ले बूढ़े की बगल में घुसेड़ दी और बोला—"ऐ बूढ़े! मेरे रुपये देकर तब सो जाओ।"

बनिये ने लाठी का प्रहार न मालूम कहाँ किया, बूढ़ा भयंकर रूप से कराह उठा और दम तोड़ दिया। बनिये ने अपनी जेब से तीन सौ रुपये निकालकर बूढ़े के लड़के के हाथ थमा दिया और फाँसी की सजा तथा तहक़ीकात से अपने को बचा लिया।

उसी दिन शाम को मैं शूरवर्मा के हाथ में फँस गया। शूरवर्मा क्षत्रिय है, मगर दुबले तथा कंकाल जैसे होता है। साथ ही वह कुबड़ा है। वह अविवाहित भी था। महाजनी करता है। मैंने उससे डेढ़ सौ रुपये कर्ज लिया था।

मैंने शूरवर्मा को देखते ही पूछा—"शूरवर्मा जी! सब का कर्ज चुकाकर हाथ खाली हो गया, अब जाकर आप दिखाई दे रहे हैं!"

"अरे, भाई, मैं करूँ ही क्या? घर का सारा काम-काज मुझको ही करना पड़ता है। तुम्हारे यहाँ पहुँचने के लिए मुझे अब तक फ़ुरसत ही नहीं मिली।" शूरवर्मा ने जबाब दिया।

"आप बुरा न माने, आप ने अभी तक शादी क्यों नहीं की?" मैंने पूछा।

"मुझे लड़की कौन देगा?" शूरवर्मा ने निराश भरे स्वर में कहा।

"आप को लड़की कौन नहीं देगा? आप जिस घर में रहते हैं, उसी घर की मालिकिन पार्वती बड़ी अमीर है। उसके सुंदरी नामक एक कन्या है। पार्वती आप जैसे ब्रह्मचारी के साथ उसका विवाह करना चाहती है। देरी न कीजिए! अभी जाकर पूछ लीजिए। पार्वती को बंदरों से बड़ा प्रेम है। कुत्तों पर तो जान देती है। यदि हम किसी को यह कहे कि वह युवती बंदर जैसी है, वह बहुत खुश हो

जाएगी। अगर हम यह कहे कि कुत्ते के जैसे तुम्हारे साथ बर्ताव करूँगा तो वह खुशी के मारे उछल पड़ेगी। ये बातें मत भूलिएगा।" मैंने शूरवर्मा को समझाया।

शूरवर्मा ये सारे रहस्य जानकर फूला न समाया। वह सीधे पार्वती के घर पहुँचा। उसने दर्वाजा खोलकर पूछा–"तुम्हें क्या चाहिए? किससे मिलने आये हो?"

"मैं तुम्हारी कन्या सुंदरी के साथ शादी करके तुम्हारा दामाद बनना चाहता हूँ।" शूरवर्मा ने जबाब दिया।

पार्वती घर के भीतर चली गई। उसने शूरवर्मा की आवभगत की, तब बोली–"मेरी सुंदरी सचमुच भाग्यशालिनी है। उसके बारे में तुम्हारा क्या विचार है?"

शूरवर्मा ने दाँत दिखाते हुए कहा–"वह तो बंदर जैसी होती है। उसमें किस बात की कमी है?"

"अच्छी बात है! अरे दामाद बेटा! शादी के बाद में तुम्हारे घर आऊँगी तो तुम मेरे साथ कैसे व्यवहार करोगे?" पार्वती ने पूछा।

"तुम्हारे साथ में एक कुत्ते जैसा बर्ताव करूँगा। तुम्हें किसी बात की कमी होने न दूँगा।" शूरवर्मा ने कहा।

इसके बाद पार्वती उठकर रसोई में चली गई। आग में तपे चिमटे को ले

आई, शूरवर्मा की पीठ पर तीन जगह दाग दिया। तब उसको बाहर ढकेलते हुए बोली–"अरे कमबख्त! तेरे चेहरे के लिए एक लड़की की ही कमी है। जा, भाग जा यहाँ से!"

शूरवर्मा अंधेरे में अपना मुँह छिपाकर घर जाना चाहता था, पर मैंने सामने जाकर पूछा–"अरे, आप रुपये लिये बिना चले जा रहे हैं? ये दाग कैसे? लगता है, पार्वती ने लगाये हैं?"

"अरे भैया! ज़ोर से मत चिल्लाओ। यह सारी हरक़त तुम्हारी ही वजह से हो गई है! तुम्हें कर्ज लौटाने की ज़रूरत नहीं, मगर यह बात किसी से मत कहो।

मेरी इज्जत धूल में मिल जाएगी!" इन शब्दों के साथ शूरवर्मा मेरे हाथ में पच्चीस रुपये थमा कर चला गया।

मैं भी एक बार पार्वती के क्रोध का शिकार हो गया था। उन दागों की याद आते ही एक बार पीठ पर टटोल कर देखा और उस अंधेरे में इधर चला आया।

विनय की सारी करतूतें सुनकर चोर हँस पड़ा और बोला—"तुम जैसे नालायक़ कोई दूसरा न होगा। परिस्थितियों ने तुम्हें साथ दिया, पर इनमें तुम्हारी बुद्धिमत्ता बिलकुल नहीं है! शास्त्री तो भोला और पाजी था। उसकी जगह अगर मैं होता तो तुमको बायें हाथ से उठाकर छत पर फेंक देता। बनिये की बाबत में बूढ़ा अपने आप मर गया, अब शूरवर्मा की बात रही। पार्वती के साथ यदि उसका ऐसा व्यवहार न होता तो शूरवर्मा तुम्हारे कान ऐंठकर अपने रुपये वसूल करता। इसलिए तुम मेरे साथी बनने लायक़ कदापि नहीं बन सकते!"

चोर के चले जाने पर विनय पेड़ के नीचे बैठकर सोचता रहा। अब दूसरों से उसे कर्ज लेने में डर लगने लगा। अलावा इसके अब उसे कर्ज देनेवाला ही कौन है! वह चोरी करने के लायक़ भी नहीं, पढ़ा-लिखा तो बिलकुल नहीं, ज़मीन-जायदाद नाम मात्र को भी नहीं है, ऐसी हालत में उसकी आजीविका क्या हो?

सवेरा होने को था। लोग दल बाँधकर खेतों में काम करने जा रहे थे। विनय झट उठ खड़ा हुआ और उन लोगों से पूछा—"मैं भी काम करना चाहता हूँ। क्या तुम लोग मुझको भी अपने साथ चलने दोगे?"

"क्यों नहीं? ख़ुशी से चलो! मगर मेहनत करनी होगी!" लोगों ने कहा।

विनय को आजीविका मिल गई। वह उन लोगों के दल में मिल गया और उगनेवाले सूर्य की दिशा में खेतों की ओर बढ़ा।

फैसला

रामनाथ नामक एक युवक ने एक गुरु के यहाँ न्याय शास्त्र का अध्ययन किया। जब वह अपनी पढ़ाई समाप्त कर घर जाने लगा तब गुरु ने उससे गुरुदक्षिणा के रूप में एक हज़ार रुपये माँगे।

"मैं इस वक़्त नहीं दे सकता। जब मैं अपना पहला मुक़द्दमा जीत लूँगा, तब आपको एक हज़ार रुपये दूँगा।" रामनाथ ने कहा।

रामनाथ के जाते ही गुरु ने न्यायालय में उस पर एक हज़ार रुपये की नालिश की।

न्यायाधीश ने रामनाथ से पूछा—"तुम इसका क्या जवाब दोगे?"

"यह बात सच है कि गुरुजी ने मुझसे एक हज़ार रुपये की गुरुदक्षिणा माँगी, मैंने कहा था कि प्रथम मुक़द्दमे में विजयी होने पर ज़रूर दूँगा। लेकिन यदि आप अब मुझसे उन्हें एक हज़ार रुपये दिलायेंगे तो मैं अपने प्रथम मुक़द्दमे में पराजित माना जाऊँगा, ऐसी हालत में मुझे उन्हें गुरुदक्षिणा देने की ज़रूरत न होगी। अगर वे इस मुक़द्दमे में हार जायेंगे तो उन्होंने जो माँग की, उसको आप ही गलत साबित करनेवाले होंगे।" रामनाथ ने कहा। रामनाथ की युक्ति पूर्ण बातें सुनने पर न्यायाधीश की समझ में कुछ न आया। उसने सौ साल तक मुक़द्दमा मुलतवी कर दिया।
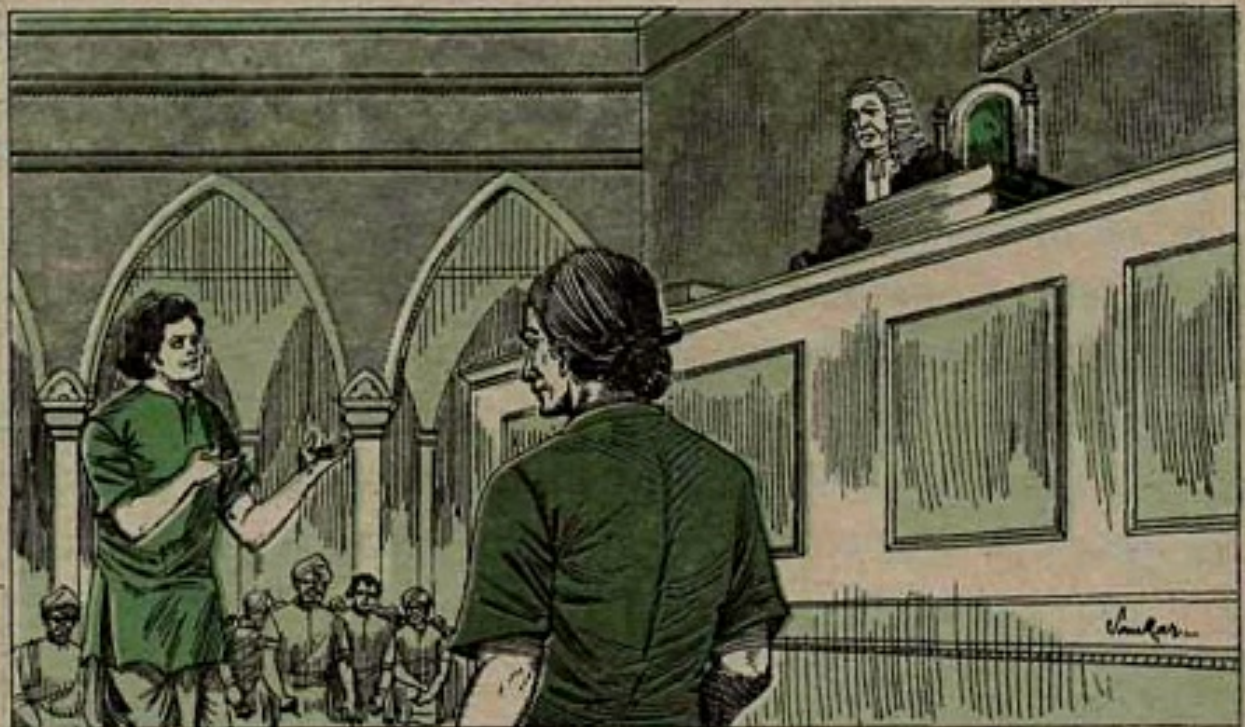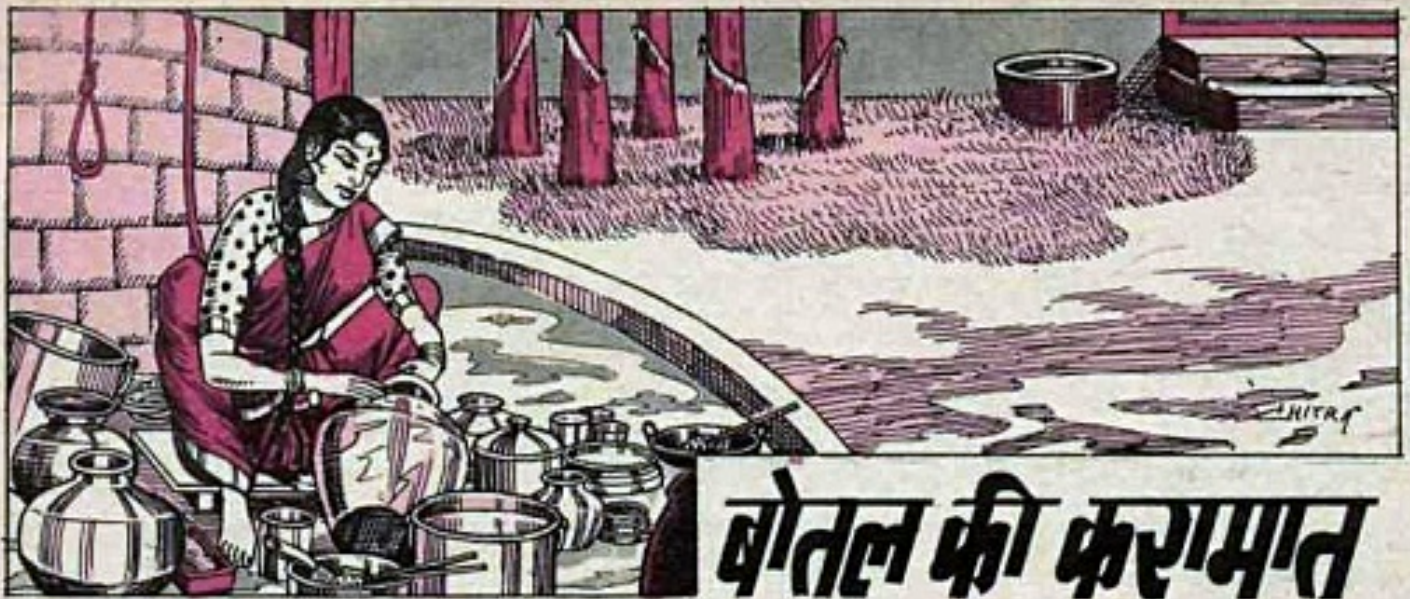
बोतल की करामात

एक गाँव में जनक नामक एक कंजूस था। वह स्वभाव से दुष्ट था। उसकी दृष्टि में धन से बढ़कर कोई चीज़ न थी। धन के वास्ते वह जो भी अनुचित कार्य करने को तैयार हो जाता था।

जनक का पुत्र रामू अपने पिता के विरुद्ध स्वभाव का था। वह अपने गाँव से पचास मील की दूरी पर एक शहर में एक व्यापारी के यहाँ नौकरी करता था। इस कारण से उसे घर पर रहने का मौक़ा मिलता न था।

दो वर्ष पूर्व जनक की पत्नी का देहांत हो गया था। घर-गृहस्थी संभालनेवाली गृहिणी न थी। इस ख्याल से उसने सुलता नामक एक कन्या के साथ अपने पुत्र रामू का विवाह किया। सुलता का पिता एक संपन्न गृहस्थ था। उसने रामू को दहेज़ के रूप में अच्छी खासी संपत्ति दी।

सुलता नाज़ुक मिजाज़ की थी। बुद्धिमति भी। शादी के पूर्व घर पर ही रहकर उसने अपने चाचा देवदत्त से थोड़ी-बहुत शिक्षा पाई थी। देवदत्त ने अध्यापन का काम करते जादू की विद्या का भी अभ्यास किया था।

शादी के बाद सुलता अपने ससुराल की नौकरानी बन गई। जनक कंजूस था, उसने सुलता की मदद के लिए किसी नौकर या नौकरानी को नहीं रखा। इसलिए घर का सारा काम सुलता को स्वयं करना पड़ता था। वह बड़ी सहनशीलता के साथ सारा काम कर लेती थी। मगर शादी के बाद भी उसे अपने पति के साथ रहने का मौक़ा न मिला। रामू दो-तीन महीनों में एक बार घर लौटता, एक-दो दिन बिताकर शहर चला जाता था। अपने पति के घर लौटने पर

श्री ए. सी. सरकार, जादूगर

दो-तीन दिन सुलता प्रसन्नतापूर्वक बिता देती, बाक़ी दिन उसे बड़ी कठिनाई से बिताने पड़ते थे।

जनक सुलता को पीहर तक भेजता न था। क्योंकि उसकी गैरहाज़िरी में उसे ख़ुद रसोई बनानी पड़ती थी। पिछले दो सालों में सुलता अपने पति के साथ पीहर एक ही दफ़ा जा सकी थी।

इन सारी कठिनाइयों के बावजूद जनक सदा इस बात के प्रति खीझ उठता था कि दो साल बीतने पर भी उसकी बहू के कोई संतान नहीं हुई। एक-दो दफ़े उसने रामू से यहाँ तक कहा था—"बेटा, तुम सुलता को तलाक देकर गाँव के मुखिये गंगाधर की पुत्री सुलोचना के साथ शादी करो। वह बड़ी ख़ूबसूरत भी है। साथ ही पांच एकड़ ज़मीन और एक हज़ार नक़द भी तुम्हें दहेज़ में मिलेगी।"

रामू ने क्रोध में आकर जवाब दिया था—"पिताजी! सुलता ने कौन-सा अपराध किया है, जिसके लिए मैं उसको तलाक दूँ? मुझे इस बात का क्या भरोसा कि सुलोचना के भी संतान होगी। शायद मेरी क़िस्मत में संतान न बदी हो?"

फिर भी जनक निराश नहीं हुआ। रामू का दूसरा विवाह करने का प्रमुख कारण उसकी कंजूसी था। गंगाधर ज़मीन व नक़द देगा, मगर सुलोचना बेवकूफ़ थी और उसकी एक आँख साफ़ दीखती न थी।
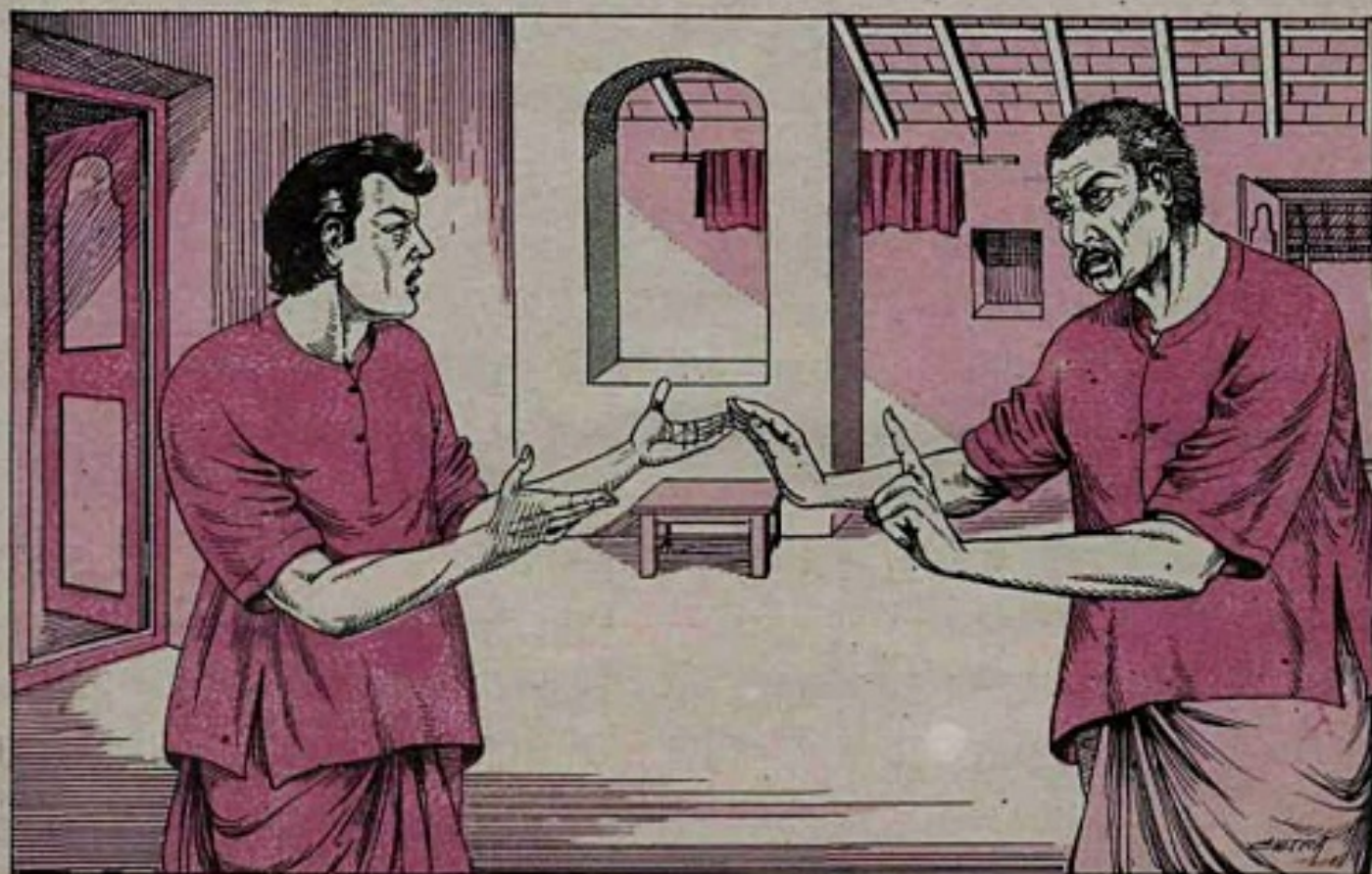
सुलता के मायके से हर महीने कोई न कोई उसे देखने आया-जाया करता था। वे खाली हाथ न आते, बल्कि अपने साथ मिठाइयाँ, तरकारियाँ और तरह-तरह के फल भी लाया करते थे। इसलिए उनके आने में जनक को कोई एतराज न था। उनके द्वारा सुलता की माँ ने कहला भेजा कि उसे अपनी बेटी को देखने की बड़ी लालसा है। कई बार खबर भी कर दी कि सुलता को भेजे। लेकिन जनक ने अपनी बहू को नहीं भेजा। सुलता विवश होकर चुप रह गई थी।

एक बार सुलता का चाचा देवदत्त उसे देखने आया। उसने सुलता से कहा–"बेटी! तुम्हारी चिंता में तुम्हारी माँ ने घुल-घुलकर खाट पकड़ रखी है। डाक्टर बताते हैं कि तुम्हें देखने पर ही उनकी तबीयत चंगी हो सकती है।"

जनक को लगा कि सुलता से पिंड छुड़ाने के लिए यह एक अच्छा मौक़ा है। उसने देवदत्त से कहा–"मैं अच्छा मुहूर्त देख सुलता को उसके मायके भेज दूँगा।" ये बातें सुन देवदत्त प्रसन्न हो चला गया।

जनक ने एक षड़यंत्र रचा। उसने गंगाधर को अपनी युक्ति बताई, गंगाधर ने भी स्वीकार किया कि वह युक्ति बड़ी सूझ-बूझ से भरी है।

जनक ने घर लौटकर सुलता से कहा–"बेटी, मैं तुम को कल तुम्हारे पीहर भेजना चाहता हूँ। लेकिन एक शर्त को तुम्हें स्वीकार करना होगा।"

"ज़रूर स्वीकार करूँगी! बताइये तो!" सुलता ने कहा।

"यह बोतल ले लो। तुम्हारे लौटते समय इसमें एक अद्भुत को लाना होगा। उसे देखते ही सब को स्वीकार करना होगा कि वह अद्भुत है। ऐसा न कर सकोगी तो तुम्हें लौट कर आने की कोई ज़रूरत नहीं! मैं रामू की दूसरी शादी करूँगा।" इन शब्दों के साथ जनक ने छोटे मुँहवाली एक गोल बोतल निकाली।

सुलता ने पल भर आँखें मूंद कर कहा– "जी! मैं समझ गई।"

"इस शर्त को तुमने मान लिया है न?" जनक ने ऊँची आवाज़ में पूछा।

"जी, मैंने मान लिया है, लेकिन मेरी भी एक शर्त है! शर्त तो दोनों पक्षों में होती है न!" सुलता ने पूछा।

"बताओ, तुम्हारी क्या शर्त है?" जनक ने पूछा।

"अगर मैं आप की शर्त को पूरा करूँ तो मुझ पर यहीं रहने का प्रतिबंध नहीं लगाना चाहिए! मुझको अपने पति के साथ शहर में रहने देना होगा! इसके लिए आप तैयार हैं?" सुलता ने शर्त रखी। जनक ने बड़ी देर तक सोचकर आखिर उस शर्त को मान लिया। इसके बाद सुलता ने अपने ससुर को भगवान की मूर्ति के पास ले जाकर शपथ कराई और उसने भी शपथ ली, तब अपने ससुर के हाथ से बोतल लेकर पीहर चली आई।

"यह बोतल कैसी?" सुलता के माता-पिता व चाचा ने पूछा।

"तलाक है! मुझको मेरे ससुर ने घर से निकाल दिया है।" इन शब्दों के साथ सुलता ने सारा वृत्तांत सुनाया।

देवदत्त सारी बातें सुनकर मुस्कुरा उठा और बोला–"इस छोटी सी बात को लेकर तुम्हें परेशान होने की कोई ज़रूरत नहीं! इतने समय बाद शायद मेरा जादू काम दे सकता है! तुम यहाँ पर एक

हफ़्ता निश्चित होकर बिताओ। मैं जनक को अच्छा सबक़ सिखलाऊँगा। तुम अपने साथ बोतल में अद्‌भुत को ले जाओगी।"

इसके बाद देवदत्त ने एक चौड़े मुँहवाले कांच के पात्र में आम्लसुरा भर दिया। एक अण्ड़े को पाँच दिन तक उसमें भिगोकर रखा, तब उसको बाहर निकाला। आश्चर्य की बात थी कि आम्लसुरा से अण्डे को बाहर निकालने पर वह मुलायम हो लचकदार बन गया। उस हालत में देवदत्त ने बड़ी सावधानी से उस लचकदार अण्डे को बोतल में ठेल दिया और उसके साथ थोड़ा-थोड़ा करके ठण्डा जल भर दिया जिससे अण्डा अपने पूर्व रूप को प्राप्त हुआ, तब फिर से कड़ा बन गया।

सुलता जब ससुराल जाने लगी, तब रामू को भी बुलाया गया। सातवें दिन सुलता के साथ उसका पति, पिता और चाचा भी जनक के घर पहुँचे।

ससुराल पहुँचते ही सुलता ने बोतल निकालकर अपने ससुर को दिखाया और कहा–"ससुर जी! आप ने अद्‌भुत लाने को कहा था। मैं अपने साथ ले आई हूँ। देख लीजिए!"

जनक ने बोतल अपने हाथ में लेकर अण्डे को चारों तरफ़ घुमाकर देखा। बोतल में कहीं दरार नहीं, छेद नहीं, मगर उसमें बोतल के मुँह से भी बहुत बड़ा अण्डा है। उसे इस बात का बड़ा आश्चर्य हुआ कि बोतल के इतने छोटे मुँह से होकर उससे दुगुना बड़ा अण्डा बोतल के अन्दर कैसे चला गया।

"क्या आप मान लेंगे कि यह अद्‌भुत है?" सुलता ने पूछा।

"क्यों नहीं, मान लेता हूँ!" जनक ने सूखे स्वर में जवाब दिया।

"तब तो आप अपनी शर्त के अनुसार मुझको अपने पति के साथ भेज दीजिए!" सुलता ने पूछा। इसके बाद सुलता अपने पति के साथ शहर में चली गई। अब उसके दो बच्चे हैं–एक लड़का और एक लड़की! पति-पत्नी सुखपूर्वक हैं।
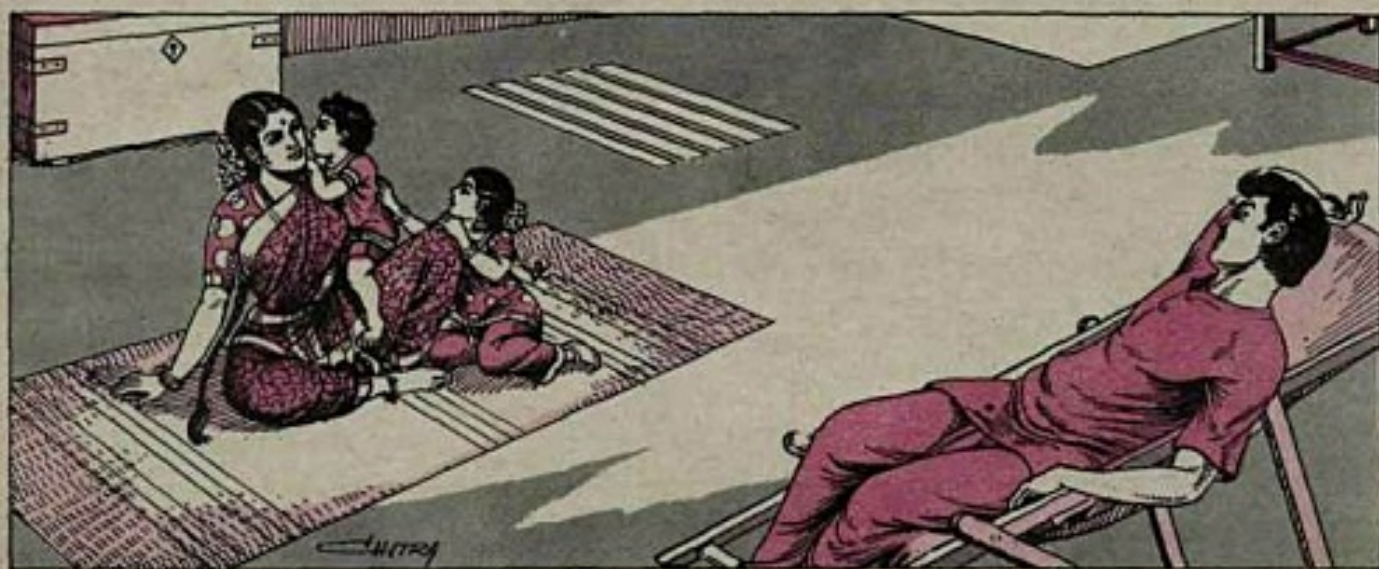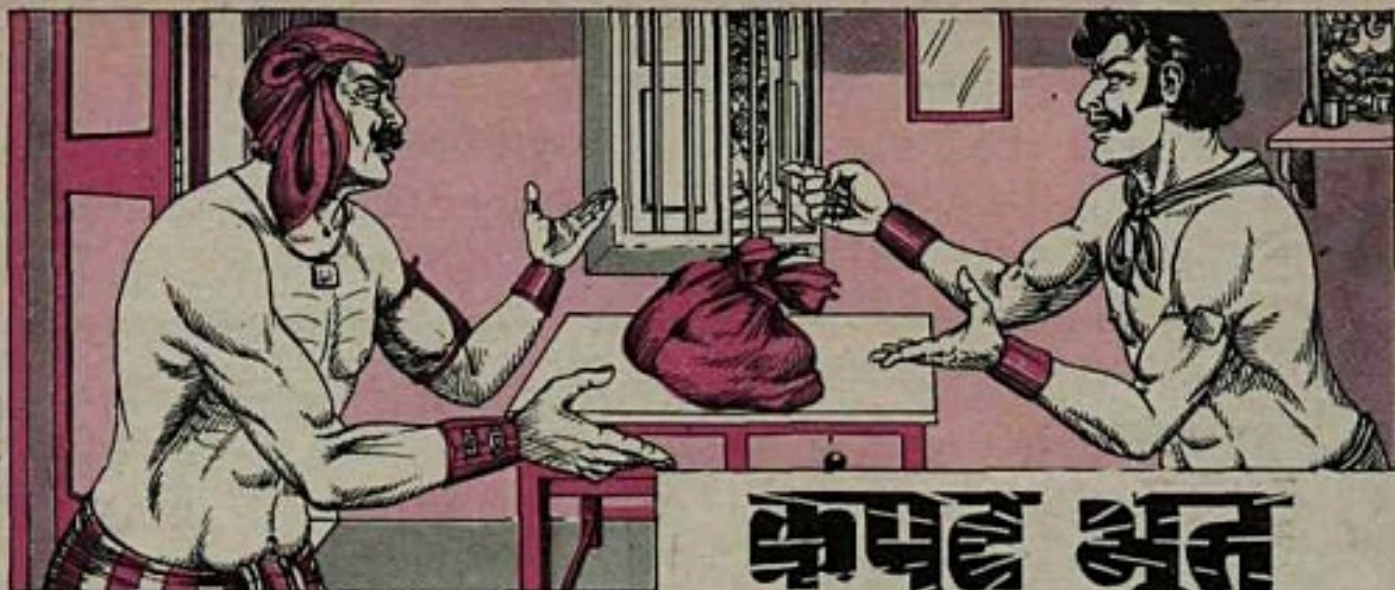
कांपते भूत

एक गाँव में दो चोर थे। एक चोरी करने में निपुण था तो दूसरा पकड़े जाने से बचने की कला में प्रवीण था। दोनों एक-दूसरे को सहयोग देते हुए चोरियाँ किया करते थे।

एक बार उस गाँव का पंडित अपने घर पर ताला लगा कर परिवार के साथ पड़ोसी गाँव में शादी में गया। मौक़ा पाकर उस दिन की रात को दोनों चोर पंडित के घर में घुस पड़े; सारा माल लूट कर गठरी बांध ली और अब भागने की तैयारी में थे।

उस वक़्त एक किसान ने चोरों का पता लगाया और ज़ोर से चिल्ला उठा— "चोर! चोर! पकड़ो, जल्दी करो।" किसान की चिल्लाहट सुनकर कई लोग लाठियाँ लेकर आये और पंडित के घर को घेर लिया।

चोर घबरा गये। भीतर से कुंडी चढ़ा ली और डर के मारे थर-थर कांपने लगे। थोड़ी देर बाद एक चालाक चोर ने दूसरे से कहा—"डरने से कोई प्रयोजन नहीं है, हमें किसी भी उपाय से बच कर भागने का प्रयत्न करना चाहिए।" इन शब्दों के साथ उसने एक उपाय बताया। इसके बाद एक ने औरत की आवाज़ में कहा—"सुनोजी! बाहर यह कैसा कोलाहल है?"

दूसरे ने अपना स्वर बदल कर जवाब दिया—"अरी, वे सब पागल हैं। बेचारे वे नहीं जानते कि हम भूत हैं, हमें चोर समझ कर सब लोग परेशान हैं। हमने यहाँ पर आकर बड़ी भूल की। इस ब्राह्मण के घर में हमारे खाने के लिए न मुर्गे हैं और न भेड़-बकरियाँ! शायद जल्दी सवेरा हो जाय, हम झट मुखिये के घर

विक्रमसिंह

चलेंगे। वहाँ पर हमें काफी भेड़-बकरियाँ मिल जाएँगी! भर पेट खाकर सवेरा होने के पहले अपने डेरे पर पहुँच सकते हैं।"

"अच्छी बात है! चलो।" पहले ने औरत के स्वर में जवाब दिया।

बाहर से गाँव के लोगों ने उनकी बातचीत सुन ली। आपस में कहने लगे– "अरे, ये तो भूत हैं, भूत! चलो, जल्दी हम यह बात मुखिये के कान में डाल देंगे; वरना ये भूत उनके घर पहुँच जायेंगे!" यों कहते सब लोग मुखिये के घर की तरफ़ भाग खड़े हुए।

गाँव के लोगों के जाते ही चोर गठरी उठाये वहाँ से खिसक गये। लोगों का कोलाहल सुनकर मुखिये चौंक कर उठ बैठा।

"मुखिया साहब! बड़ी आफ़त आ गई! भूत पंडित के घर से आकर आप के घर में घुस रहे हैं!" इन शब्दों के साथ लोगों ने सारा वृत्तांत सुनाया। सब लोगों के मुँह से एक साथ यह समाचार सुनकर मुखिया घबरा गया और भेड़ों की शाला पर बलवान लोगों का पहरा बिठाया। ओझा को बुलवा भेजा।

ओझाओं ने मंत्र-पठन करते नीम की टहनियों, सूप और झाडुओं को पटकते भूतों को भगाने की कोशिश की। इस प्रयत्न में सवेरा हो गया। ओझा लोग पुरस्कार लेकर अपने अपने घर चले गये।

दूसरे दिन पंडित सपरिवार अपने घर लौट आया। गाँववालों ने उसे सारा समाचार कह सुनाया। मगर पंडित ने घर के भीतर प्रवेश करके देखा, घर में एक भी चीज़ बची न थी।

पंडित ने गुस्से में आकर कहा–"तुम लोग तो बेवकूफ़ ठहरे! सब के रहते मेरे घर को लूटने दिया। तुम्हारी आँखों में धूल झोंक कर चोर भाग गये!"

जब यह ख़बर मुखिये को लगी, तब वह यह सोचकर पछताने लगा–"उफ़! मैंने ही अकारण बहुत सारे रुपये ओझाओं के पीछे लुटाया।"

शिकारी का बेटा

एक शिकारी के एक पुत्र था। वह बड़ा ही शंकालू था। एक दिन पिता ने अपने पुत्र से कहा–"बेटा! आज मेरी तबीयत ठीक नहीं है। तुम जंगल में जाकर एक खरगोश या हिरण को पकड़ लाओ।"

बेटा शिकार के पीछे बड़ी देर तक जंगल को छानता रहा, मगर उसे कोई जानवर दिखाई न दिया। आखिर वह अपनी प्यास बुझाने एक तड़ाग के पास पहुँचा। वहाँ पर पानी पीते हुए उसे एक खरगोश और एक हिरण दिखाई दिये।

दूसरे ही क्षण वह अपने घर दौड़ आया और अपने पिता से पूछा–"पिताजी! आप ने जिस खरगोश और हिरण की बात बताई, वे दोनों एक तालाब में पानी पी रहे हैं। बताइए कि आप उन दोनों में से किसे चाहते हैं? मैं अभी शिकार करके ले आता हूँ।"

"अरे मूर्ख! क्या अब तक वे दोनों तुम्हारी राह देखते वहीं पर रहेंगे? तुम्हारी खोपड़ी में गोबर भरा है। तुम्हारा फिर से वहाँ पर जाना बेकार है।" पिता ने अपने पुत्र की इस मूर्खता पर खेद प्रकट किया।

महा मूर्ख

एक गाँव में एक मंदबुद्धिवाला था। वह आजीविका के वास्ते एक बजाज के यहाँ काम पर लग गया। वह कपड़े के व्यापार से संबधित सारे काम-काज किया करता था।

एक दिन मंदबुद्धिवाले के लिए करने को कोई काम न था। व्यापारी ने उसके हाथ एक थान देकर समझाया—"तुम इसे ले जाकर बाज़ार में बेच आओ, इसके बेचने से जो नफ़ा होगा, थोड़ा हिस्सा तुम्हें भी दूँगा।" व्यापारी का उद्देश्य था कि इस प्रकार मंदबुद्धिवाला व्यापार के संबंध में थोड़ी-बहुत जानकारी प्राप्त करेगा और साथ ही उसकी ऊपरी आमदनी भी हो जाएगी।

मंदबुद्धिवाले ने व्यापारी से पूछा—"मालिक, बताइये, यह थान कितने में बेच दूँ?"

व्यापारी ने सोचा कि मंदबुद्धि को थान का भाव मालूम है, इसलिए उसने कहा—"दस पैसे कमी-बेशी में बेच दो; इसमें कौन ज्यादा फ़रक पड़ता है?"

थान लेकर मंदबुद्धिवाला हाट में पहुँचा और एक जगह जा बैठा। कोई ग्राहक उसके यहाँ पहुँचकर दाम पूछता—"अरे भाई, यह थान कितने में बेचोगे?" वह यही जवाब देता—"दस पैसे कमी-बेशी दूँगा। बस, इससे कम दाम में नहीं बेचूँगा!" ग्राहकों ने सोचा कि वह मज़ाक कर रहा है, इसलिए कपड़ा खरीदे बिना हंसकर चले जाते!

एक चतुर व्यक्ति यह सारा तमाशा देख रहा था, उसने भांप लिया कि मंदबुद्धिवाला निरा मूर्ख है, उसने दोनों हाथों में दो दस पैसे दिखाकर कहा—"वह थान मुझे दे दो!" दो दस पैसे इधर-उधर

कुमारी मालती जोशी

हैं, इसलिए मंदबुद्धि ने सोचा कि सौदा पटा है, उसने चतुर आदमी के हाथ में थान देकर बीस पैसे ले लिये ।

मंदबुद्धिवाले को भूख सता रही थी । उसने बीस पैसे में एक रोटी खरीद ली और खाने के वास्ते एक जगह जाकर बैठ गया । इतने में कहीं से एक कुत्ता चला आया, उसके हाथ की रोटी छीन कर भाग गया ।

भूखा-प्यासा मंदबुद्धिवाला व्यापारी के पास लौट आया और बोला–"आपने मुझे एक ही थान दिया, दस-बीस थान दिये होते तो उन सब को बड़ी आसानी से बेच दिया होता ।"

"तुम ने जिस थान को बेच दिया, उसके रुपये दे दो, कल और ज्यादा थान तुम्हें दूंगा ।" व्यापारी ने कहा ।

"मैंने थान बेच दिया बीस पैसे में । भूख लगी थी, इसलिए बीस पैसे देकर रोटी ख़रीद ली । मैं शपथ खाकर कहता हूँ कि उस में से एक पैसा भी नहीं बचा ।" मंदबुद्धिवाले ने सच्ची बात बताई ।

यह बात सुनने पर व्यापारी को बड़ा क्रोध आया । उसने गरज कर कहा–"यह तुम क्या बकते हो ? थान का पूरा मूल्य न लाओगे तो तुम्हारी हड्डी-पसली तोड़ डालूंगा ।"
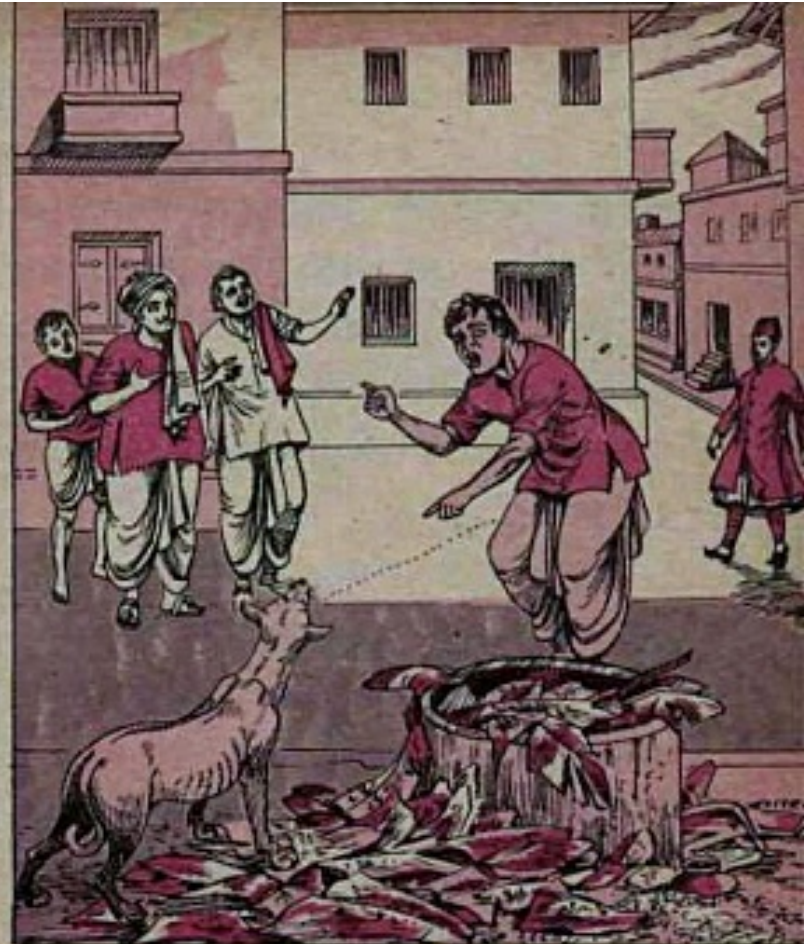
मंदबुद्धिवाला डर कर वहाँ से भाग गया । वह अपनी रोटी हड़पनेवाले कुत्ते की खोज़ करने लगा । आखिर वह एक जगह झूठे पत्तलों को चाटते दिखाई दिया ।

मंदबुद्धिवाले ने कुत्ते पर झपट कर पूछा–"मेरे पैसे मुझे वापस कर दो ।"

कुत्ता उसे देख डर गया और भाग खड़ा हुआ । वह भागते-भागते आखिर एक अमीर के घर में घुस पड़ा । आगा-पीछा देखे बिना मंदबुद्धिवाला भी उस घर में घुस पड़ा ।

उस वक्त वह अमीर रुपयों का हिसाब करके गड्डियों में बांध कर तिजोरी में उन्हें

सजा रहा था। वह किसी काम से एक-दो मिनट के लिए दूसरे कमरे में चला गया। उस वक़्त मंदबुद्धिवाला घर में घुस पड़ा। तिजोरी खुली हुई थी। मंदबुद्धिवाला रुपयों की एक गड्डी उठाकर भाग गया और उसे व्यापारी के हाथ दे दिया।

व्यापारी ने सोचा कि उसे अपने थान का बड़ा अच्छा मूल्य मिल गया है। उसने प्रसन्न होकर मंदबुद्धिवाले को थोड़े रुपये देकर भेज दिया।

इस बीच अमीर ने कोत्वाल के पास जाकर फ़रियाद की कि उसके घर में चोरी हो गई है। सिपाहियों ने तहक़ीक़ात की तो आख़िर मंदबुद्धिवाले पर इलज़ाम ठहराया गया।

कोत्वाल ने मंदबुद्धिवाले को बुलवाकर पूछा—"क्या तुमने अमुक अमीर के घर में रुपयों की चोरी की है?"

"जी हाँ!" मंदबुद्धिवाले ने जवाब दिया।

"तुमने कब चोरी की?" कोत्वाल ने फिर पूछा।

"जिस दिन मैंने कुत्ते का पीछा किया!"

"तुम ने कुत्ते का पीछा कब किया?" कोत्वाल ने फिर पूछा।

"जिस दिन मैंने रुपयों की चोरी की!" मंदबुद्धि ने जवाब दिया।

कोत्वाल की समझ में कुछ न आया। उसने पूछा—"तुम्हारा घर कहाँ पर है?"

"पंडितजी के घर के सामने!" मंदबुद्धि ने उत्तर दिया।

"अच्छा, यह बताओ कि पंडितजी का घर कहाँ पर है?" कोत्वाल ने पूछा।

"मेरे घर के सामने।"

"वे दोनों घर कहाँ पर हैं?" कोत्वाल का सवाल था।

"दोनों घर आमने-सामने हैं जी!" मंदबुद्धि ने खीझकर उत्तर दिया। कोत्वाल ने भांप लिया कि मंदबुद्धिवाला महा मूर्ख है, इसलिए उसको क्षमा करके भेज दिया।

१६०. मेरु पर्वत

ऐतरेय ब्राह्मण तथा बौद्ध ग्रंथों में बताया गया है कि उत्तर कुरु प्रांत पृथ्वी का स्वर्ग है, वह मानवों के लिए अजेय है, जो हिमालयों के उस पार है, जहाँ पर निवास करनेवाले पापों से मुक्त हैं और वे जमीन को जोतना या रथों पर घूमना नहीं जानते। उसी प्रदेश को आज हम "पामीर" कहते हैं। वह प्रदेश थोड़े वर्ष पूर्व तक मानवों के प्रवेश के लिए दुर्लभ था। आज सोवियत रूस के शासन में वहाँ पर सभ्यता का विकास होता जा रहा है, उद्यान लगाये जा रहे हैं। विद्युत का प्रसार है। तिरुपति की भाँति वह भी सप्तगिरि है। इसी को हमारे पूर्वजों ने मेरु पर्वत बताया है।
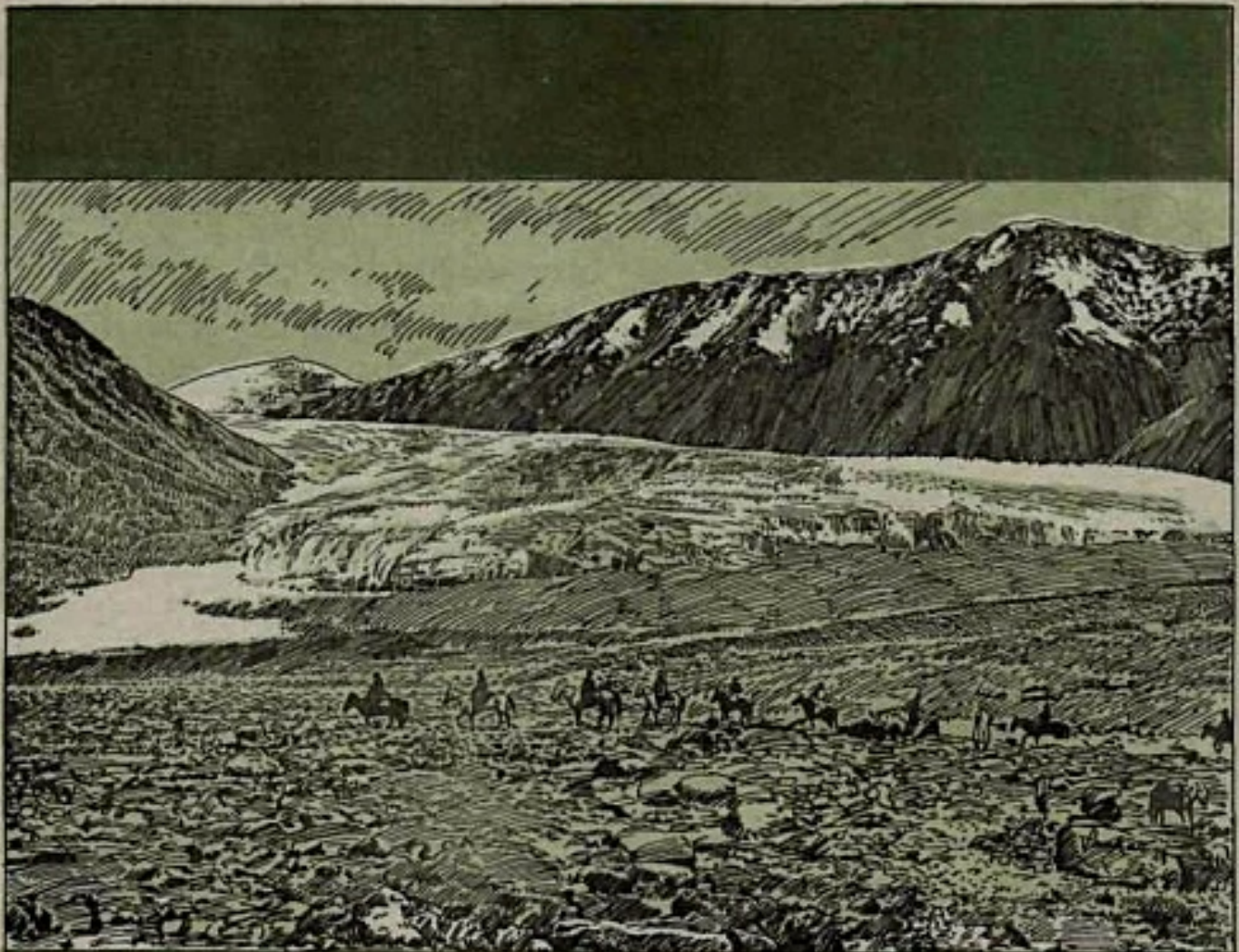
अनोखी चीज़

पुराने जमाने की बात है। विदर्भ देश के राजा के यहाँ यह परिपाटी थी कि यदि उसे कोई अनोखी चीज़ देता तो उसे प्रति वर्ष दस हज़ार सोने की मुद्राएँ पुरस्कार के रूप में दिया करता था।

उसी राज्य में प्रवर नामक एक मंत्र वैद्य था। उसने अनेक वर्षों तक खोज करके एक अद्भुत तैयार किया। उसकी विशेषता यह थी कि उस रसायन का पान करते हुए जो आदमी जिस रूप का स्मरण करेगा, वह उस रूप को प्राप्त करेगा। मगर ऐसे लोग पुनः अपने पूर्व रूप को प्राप्त करना चाहे तो उन्हें उस रसायन के प्रतिकार करना था। पर प्रतिकार की दवा तैयार करना वैद्य के लिए संभव न हुआ। इसलिए उसने उस अद्भुत रसायन का प्रयोग किसी पर नहीं किया, फिर भी राजा को उसका परिचय देकर एक वर्ष का पुरस्कार प्राप्त करना चाहा। इस उद्देश्य से उस रसायन को एक प्याले में भरकर राजा को दिखा दिया।

उस रसायन का प्रभाव बताकर वैद्य ने राजा से कहा—"इसके प्रतिकार की दवा तैयार करने के लिए मुझे एक चीज़ प्राप्त नहीं हुई है। इसलिए मैंने आज तक इस रसायन का प्रयोग नहीं किया है। यदि आप इसको इस वर्ष की अनोखी चीज़ मानकर मुझे पुरस्कार प्रदान करे तो मैं अपने को धन्य समझूंगा।"

"इसकी जांच किये बिना मैं कैसे जानूं कि यह एक अपूर्व वस्तु है! तुम इस रसायन को अपने पुत्र के द्वारा पिलाकर इसके प्रभाव को साबित करो।" राजा ने कहा। इसके बाद राजा ने एक सिपाही को आदेश दिया कि वह वैद्य के पुत्र को बुला लावे। वैद्य ने सर पीटते हुए मना

रामकुमार श्रीवास्तव

किया, फिर भी दवा का असर जानने के कुतूहल से राजा ने उसकी एक न सुनी।

वैद्य के बारह साल का पुत्र आ पहुँचा। राजा ने उससे पूछा–"क्या तुम पक्षी बनकर उड़ना चाहते हो? या हिरण बनकर छलांगे मारना चाहते हो? या हाथी बन जाने की इच्छा रखते हो? किसी एक का स्मरण करते तुम यह दवा पी जाओ।" वैद्य ने मना किया।

"तुम रोते ही क्यों हो? प्रतिकार की दवा की खोज करके तुम अपने पुत्र को यथा रूप दिलाओ। तुम्हें एक और पुरस्कार दूंगा।" राजा ने समझाया।

वैद्य का पुत्र हिरण के रूप का स्मरण करते रसायन पीकर हिरण में बदल गया। मंत्र वैद्य एकदम रो पड़ा।

"तुम रोते ही क्यों हो? यह पुरस्कार ले लो! प्रतिकार की दवा का शीघ्र आविष्कार करो।" राजा ने कहा।

"प्रतिकार की दवा तैयार करने के लिए एक चीज़ मिलती नहीं, वह दुर्लभ वस्तु है।" वैद्य ने जवाब दिया।

"वह दुर्लभ वस्तु कौन है?" राजा ने पूछा। "राजवंश में पैदा हुए ऐसे व्यक्ति की दायीं आँख चाहिए जिसकी उम्र पचास से ज्यादा हो!" वैद्य ने बताया।

"बस, यही बात है! मेरे शत्रु कोसल राजा पचास साल से ज्यादा उम्र का है। मैं उस पर आक्रमण करूँगा, उसको हराकर उसकी दायीं आँख ले आऊँगा।

तुम घबराओ मत।" राजा ने समझाया। मंत्र-वैद्य पछताते हुए हिरण के रूप को प्राप्त अपने पुत्र को लेकर घर पहुँचा। राजा ने पुरस्कार वैद्य के घर पहुँचा दिया।

विदर्भ राजा के भी बारह वर्ष का एक पुत्र था। वह भी वैद्य के पुत्र के साथ साथ एक ही गुरु के यहाँ शिक्षा पाता था। दोनों में गहरी दोस्ती थी।

एक दिन राजकुमार अपने मित्र को देखने वैद्य के घर पहुँचा। वैद्य ने रोते हुए राजकुमार से कहा—"राजकुमार! मैंने यह रसायन तैयार करके अपने ही वंश का सर्वनाश कर लिया है।" इन शब्दों के साथ उसने राजकुमार को वह रसायन दिखाया। राजकुमार के मन में भी यह तीव्र इच्छा पैदा हुई कि वह भी हिरण के रूप में बदलकर अपने मित्र के जैसे हो जाय! उसने भी हिरण का स्मरण करते हुए उस रसायन को पी डाला। दूसरे ही क्षण राजकुमार भी हिरण के रूप में बदल गया। राजकुमार के साथ आये हुए सिपाही हिरण को साथ ले राजा के यहाँ लौट गये।

अपने पुत्र को भी हिरण के रूप में देख राजा का दिल बैठ गया। उसने डींग तो मारी थी पर कोसल राजा को जीतने की शक्ति उसमें न थी।

कोसल राजा को बंदी बनाने की बात दूर रही, युद्ध में उसका सामना करने की ताक़त भी विदर्भ राजा नहीं रखता था।

जब वैद्य का पुत्र हिरण के रूप में बदल गया, तब विदर्भ राजा को कोई ज्यादा व्यथा नहीं हुई, लेकिन अपने पुत्र के हिरण बनते ही प्रतिकार की दवा के वास्ते उसे जल्दी मचानी पड़ी। विदर्भ राजा भी पचास साल की उम्र को पार कर चुका था। इसलिए उसने अपनी बायीं आँख निकाल कर वैद्य के हाथ में दी।

प्रतिकार की दवा तैयार हुई। राजकुमार तथा वैद्य का पुत्र पुनः अपने पूर्व रूपों को प्राप्त हुए। डींग मारने के अपराध में राजा काना बन गया।

सम्राट कृष्णदेवराय साहित्य प्रेमी थे। देश भर के पंडितों तथा कवियों का वे सत्कार किया करते थे। अनेक कवि और पंडित सम्राट के समक्ष अपने पांडित्य का प्रदर्शन करके पुरस्कार पाते थे।

सम्राट की राजधानी विजयनगर में रामशर्मा नामक एक साधारण पंडित था। वैसे वह कोई विशिष्ट पांडित्य नहीं रखता था, लेकिन किसी न किसी रूप में सम्राट से बहुत बड़ा पुरस्कार प्राप्त करने का लोभ उसके मन में पैदा हुआ। इस वास्ते बड़ी मेहनत के साथ थोड़ी छन्दोबद्ध कविताएं रचीं और सम्राट के दरबार में पहुँचा। सम्राट के समक्ष उसने अपने को बहुत बड़ा पंडित और कवि घोषित्त किया और अपनी कविताएँ सुनाईं।

सम्राट स्वयं बड़े कवि व पंडित थे, इसलिए रामशर्मा की कविता फीकी होने पर इस ख्याल से उसे एक छोटा-सा पुरस्कार दिया कि बेचारे एक गरीब पंडित के दिल को ठेस न पहुँचे।

छोटा पुरस्कार पाकर रामशर्मा सम्राट पर नाराज़ हो गया। उसने सम्राट की निंदा की कि वे पक्षपाती हैं, वरना अपनी कविता तथा बड़े पुरस्कार पानेवाले कवियों की कविता में अंतर ही क्या है? कविता तो सब की समान होती है।

रामशर्मा की बातें सुनने पर सम्राट को बड़ा दुख हुआ। महामंत्री तिम्मरुसु ने सम्राट के कानों में कोई बात बताई।

दूसरे दिन रामशर्मा के घर में दो व्यापारी पहुँचे और बोले—"पंडितजी, हम बढ़िया साड़ियाँ ले आये हैं। क्या आप खरीदना चाहेंगे?"

रामशर्मा की पत्नी अनेक दिनों से रेशमी साड़ी खरीदना चाहती थी।

अनुपमा सेठी

पंडितजी ने व्यापारियों को घर के भीतर बुलाया और साड़ियाँ देख लीं। उनमें से पीले रंग की एक साड़ी पंडिताइन को बहुत पसंद आई। मगर रामशर्मा को गुलाबी रंग की साड़ी पसंद थी। वास्तव में गुलाबी रंग की साड़ी अच्छी थी। रामशर्मा ने दोनों साड़ियों का मूल्य पूछा।

व्यापारियों ने उत्तर दिया–"दोनों साड़ियों का मूल्य सौ-सौ मुद्राएं हैं।"

रामशर्मा को आश्चर्य हुआ। उसने सोचा था कि गुलाबी रंग की साड़ी का मूल्य ज्यादा होगा।

मगर रामशर्मा की पत्नी ने अपने पति से कहा–"ये व्यापारी हमें दगा दे रहे हैं। पीले रंग की साड़ी असली रेशम की बुनी हुई है। गुलाबी रंग की साड़ी तो वल्कल रेशमी की बनी है। साड़ियों के बारे में आप जानते ही क्या हैं?"

इस पर रामशर्मा ने व्यापारियों से कहा–"यह कैसा अन्याय है? असली रेशमी साड़ी और नक़ली रेशमी साड़ी का मूल्य बराबर कैसे हो सकता है?"

इस पर व्यापारियों ने जवाब दिया–"रामशर्माजी, कल आप ही ने तो सम्राट के दरबार में निंदा की थी कि कविता तो सब की एक ही प्रकार की होती है, उसमें अंतर कैसा है और पुरस्कारों में भी अंतर क्यों? इसी प्रकार चाहे कोई भी साड़ी हो, साड़ी ही तो हैं? उनके मूल्यों में अंतर क्यों होगा?"

रामशर्मा को सम्राट के दरबार में अपने किये गये व्यवहार पर लज्जा हुई। वह यह सोचकर चकित था कि यह बात ये व्यापारी कैसे जान गये हैं? तभी सम्राट और महामंत्री अपने वास्तविक रूपों में प्रकट हुए। रामशर्मा ने सम्राट के चरणों पर गिरकर अपनी करनी के लिए क्षमा माँगी। उदार हृदयवाले सम्राट ने असली रेशम की साड़ी को रामशर्मा की पत्नी को उपहार दिया और मुस्कुराते हुए महामंत्री को साथ ले राजमहल की ओर चले गये।

श्री रामचन्द्रजी का आदेश पाकर लक्ष्मण किष्किधा की ओर चल पड़ा। उसने अपने कंधे पर धनुष लटकाया, सुग्रीव के घर जाते मन में सोचने लगा– सुग्रीव से क्या पूछना होगा, सुग्रीव उसका क्या उत्तर देगा? उसके उत्तर का जवाब फिर उसे क्या देना है? यों तो वह भीतर ही भीतर सुग्रीव से सख़्त नाराज़ था।

लक्ष्मण को दूर पर आते देख वानरों ने सोचा कि कोई दुश्मन आ रहा है। इसलिए वे सब पेड़ व पत्थर लेकर युद्ध के लिए तैयार हो गये। इससे लक्ष्मण का क्रोध और भड़क उठा। उसके चेहरे पर क्रोध को देख वानर भयभीत हो उठे और सुग्रीव के पास जाकर लक्ष्मण के आगमन का समाचार दिया। मगर सुग्रीव तारा के साथ था, इसलिए उसने वानरों की बातों पर कोई ध्यान न दिया।

अंगद सहमे हुए लक्ष्मण के निकट जा पहुँचा। लक्ष्मण ने उससे कहा–"देखो भाई, तुम सुग्रीव को इत्तिला दो कि मैं अभी उससे मिलना चाहता हूं। यह भी कहो कि मेरे भाई इस वक़्त अत्यंत दुखी हैं, इसी वजह से मैं यहाँ आया हूँ। वह शीघ्र आकर मेरी बातें ध्यान से सुन लें।"

अंगद ने सुग्रीव के पास जाकर बताया कि लक्ष्मण उससे वार्ता करने आये हैं और बहुत ही नाराज़ मालूम होते हैं। यह समाचार सुनकर सुग्रीव ने अपने मंत्रियों से कहा–"मैंने कोई ऐसी अशोभनीय

७. सुग्रीव की सहायता

"राजन, आप को रामचन्द्रजी के उपकार को कभी भूलना नहीं चाहिए। मगर असावधान हो काल की गति पर आप ध्यान नहीं दे रहे हैं। शरद ऋतु का प्रारंभ हो गया है, युद्ध की तैयारी करने के लिए यही अच्छा समय है। इसीलिए शायद लक्ष्मण याद दिलाने आये होंगे। अपनी पत्नी के वियोग के दुख में श्री रामचन्द्रजी लक्ष्मण के द्वारा कठोर शब्द ही कहलावे, तो भी आप को शांत रहना होगा। कर्तव्य का विस्मरण कर आप ने अपचार किया, इसलिए मेरी दृष्टि में लक्ष्मण के साथ नम्रतापूर्वक बात करना उचित होगा।

बात नहीं कही और न मैंने कोई भूल ही की है। मुझ पर वे नाराज़ क्यों होंगे? मेरे दुश्मनों ने मेरे विरुद्ध उनके कान भर दिये होंगे। तुम लोग यह मत सोचो कि इस वक़्त में डर रहा हूँ। मुझे श्री रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मण से कोई डर नहीं है। परंतु यदि मित्र हम पर अकारण ही नाराज हो जाते हैं तो हमें भी थोड़ा दुख होता है। मेरा डर तो केवल इस बात का है कि श्री रामचन्द्रजी ने मेरा जो उपकार किया है, उसका प्रत्युपकार नहीं कर पाऊँगा।"

इस पर बुद्धिमान हनुमान ने अन्य मंत्रियों के समक्ष सुग्रीव को समझाया– एक मंत्री के नाते मैं आप के हित के लिए ये बातें बता रहा हूँ। आप अपने पुत्र तथा रिश्तेदारों को साथ ले लक्ष्मणजी के पास तुरंत चले जाइए, विनयपूर्वक उन्हें प्रणाम करके उनके सुझावों का पालन कीजिए।"

थोड़ी देर बाद अंगद लक्ष्मण को लिवा लाया। लक्ष्मण ने किष्किंधा में वानर प्रमुखों के घरों का अवलोकन करते सुग्रीव के महल में प्रवेश किया। वह महल इंद्र भवन सदृश था। सुग्रीव के अंतःपुर से वीणा की ध्वनि सुनाई दे रही थी। अनेक अत्यंत रूपवती नारियाँ एकत्रित थीं। लक्ष्मण को लगा कि सुग्रीव राज्य के मिलते ही सुखभोगों में डूबा हुआ है। उसने

क्रोध में आकर अपने धनुष की प्रत्यंचा खींचकर भयंकर ध्वनि की।

उस ध्वनि को सुनते ही सुग्रीव ने भांप लिया कि लक्ष्मण आ गये हैं, साथ ही उसका कलेजा कांप उठा। उसकी जिह्वा सूख गई। उसने तारा से कहा–"तारा, लक्ष्मण तो शांत स्वभाव के हैं। पर इन्हें क्रोध क्यों कर हुआ होगा? क्या मैंने कोई ऐसा काम किया जिससे वे नाराज़ हो जाय? तुम जाओ, लक्ष्मण को प्रसन्न करो, थोड़ी देर बाद में आ जाता हूँ।"

तारा लक्ष्मण के निकट पहुँची। मधुपान का नशा अभी तक उतरा न था, लगता था कि वह अभी अभी बिस्तर पर से उठकर चली आई है, इस दृश्य को देख लक्ष्मण ने अपना मस्तक झुका लिया।

तारा ने लक्ष्मण से पूछा–"हे लक्ष्मणजी! आपको किसने अप्रसन्न किया? ऐसी हिम्मत ही किसे हुई?"

"अपने पति का हित चाहनेवाली क्या तुम नहीं जानती? तुम्हारा पति सदा मध्यपान करते, नारियों के मोह में पड़कर कर्तव्य को बिलकुल भूल बैठा है। क्या उपकार का प्रत्युपकार करना धर्म तथा अर्थ के लिए हानिकारक नहीं होता? यदि हमारी इस तरह उपेक्षा करते हैं तो तुम्हीं बताओ, हमें क्या करना होगा?" लक्ष्मण ने तारा से पूछा।

तारा ने शांत स्वर में उत्तर दिया–"लक्ष्मणजी, क्या आप को अपने मित्र पर नाराज होना ठीक लगता है? वे तो आप का कार्य संपन्न करना ही चाहते हैं; पर थोड़ा विलंब ज़रूर हो गया है। इसके लिए आप जैसे महा पुरुष को अल्प व्यक्ति पर नाराज नहीं होना चाहिए! आप के कार्य में देरी होने का कारण मैं हूँ। इसलिए आप सुग्रीव को क्षमा कीजिए। महान तपस्वी ही औरत के सामने झुक जाते हैं तो सुग्रीव का क्या कहना?"

इसके बाद लक्ष्मण को तारा सुग्रीव के महल के भीतर ले गई। सुग्रीव अत्यंत

वैभवपूर्वक स्वर्णाभूषण तथा पुष्पमालाएँ धारण किये सोने के सिंहासन पर शोभायमान है। उसके चतुर्दिक अप्सराओं को भुलानेवाली अनेक सुंदर नारियाँ हैं। सुग्रीव रुमा को अपने आलिंगन में लिये हुए है। उस दृश्य को देखते ही लक्ष्मण काल रुद्र जैसे क्रोधावेश में आ गये।

लक्ष्मण को देखते ही सुग्रीव भयभीत हो अपने आसन से उतर पड़ा और नीचे खड़ा हुआ। उसके साथ समस्त नारियाँ उठकर खड़ी हो गईं।

सुग्रीव लक्ष्मण को प्रणाम करते खड़ा हो गया। इस पर लक्ष्मण ने सुग्रीव से यों कहा :-

"श्री रामचन्द्रजी ने जब तुम्हारा कार्य संपन्न किया, तब क्या तुम्हें उनके कार्य को भी पूरा करना उचित न होगा? तुम तो कृतज्ञ हो! झूठे वादे करनेवाले हो! तुम ने सीताजी के अन्वेषण का प्रबंध क्यों नहीं किया? मधुपान करके नारियों के संग उन्मत्त बने नाच रहे हो! यदि श्री रामचन्द्रजी को पहले ही मालूम हो जाता कि तुम ऐसे विश्वासघातक हो तो वे क्यों तुम्हें वानरों का राजा बनाते? मैं अभी तुम को अपने बाणों से वाली के निकट भेज देता हूँ!"

लक्ष्मण के ये कटु वचन सुनकर तारा ने पुनः सुग्रीव का समर्थन करते हुए कहा- "हे लक्ष्मणजी, सुग्रीव द्रोही, दुष्ट और कृतज्ञ नहीं हैं! अनेक दिनों तक कष्ट झेलकर वे इस वक़्त सुखभोगों में डूबे हुए हैं तो मित्र के नाते आप इन्हें क्षमा कर सकते हैं न? रामचन्द्रजी के वास्ते सुग्रीव मुझे, रुमा तथा अपने सर्वस्व को त्याग कर सकते हैं। सीताजी को लाकर रामचन्द्रजी के हाथ सौंप सकते हैं! इसके वास्ते रावण के साथ युद्ध कर सकते हैं। आप लोगों के कार्य को संपन्न करने के वास्ते सुग्रीव ने वानरों को बुला भेजा है। उनके लौटने का समय आ

गया है। आज हीं व सब यहाँ पर उपस्थित हो जायेंगे। आप शांत हो जाइए।"

तारा की बातों से लक्ष्मण का क्रोध शांत हो गया। इससे सुग्रीव के मन की व्याकुलता जाती रही। उसने लक्ष्मण से कहा–"हे लक्ष्मण! यदि मेरे द्वारा आप के कार्य को संपन्न करने में विलंब हो गया हो तो मुझको क्षमा कर दीजिए। इस दुनिया में ऐसा कौन व्यक्ति है जो भूलें न करता हो?"

लक्ष्मण ने सुग्रीव की प्रशंसा करते हुए कहा–"रावण के साथ युद्ध करने के लिए तुम्हारी सहायता से बढ़कर हमें और चाहिए ही क्या? तुम अभी मेरे साथ चलो और रामचन्द्रजी को हिम्मत बंधाओ।"

सुग्रीव ने हनुमान को देख यों कहा–"तुम शीघ्र दुनिया भर के वानरों को लिवा लाने के लिए दूतों को भेज दो। मैंने पहले जिन दूतों को भेजा है, उनको तत्काल बुलवा लो! जो लोग अन्वेषण के कार्य में उत्साह नहीं दिखाते हैं, उन्हें मेरे पास भेज दो। दस दिन के भीतर जो वानर यहाँ न पहुँचे, उन्हें मृत्युदण्ड घोषित कर दो।"

हनुमान ने सुग्रीव के आदेशानुसार किष्किंधा के सारे वानरों को समस्त दिशाओं में भेज दिया।

इसके उपरांत सुग्रीव ने सोने की एक पालकी मंगवाई। उस पर वह लक्ष्मण के साथ आसीन हो गया। वानर परिवार को साथ ले अत्यंत वैभवपूर्वक रामचन्द्रजी के पास पहुँचा। तब लक्ष्मण के साथ सुग्रीव पालकी से उतर पड़ा और हाथ जोड़कर खड़ा रहा। फिर रामचन्द्रजी के चरणों पर साष्टांग दण्डवत किया। रामचन्द्रजी ने स्नेहपूर्वक सुग्रीव को उठाया और उसके साथ आलिंगन किया। तब जाकर सब लोग बैठ गये।

रामचन्द्रजी ने सुग्रीव को स्मरण दिलाया कि युद्ध का समय निकट आ गया है।

सुग्रीव ने उन्हें समझाया–"महात्मा! करोड़ों की संख्या में महावीर वानर आप की सहायता के लिए आ रहे हैं। परिवार सहित रावण का वध करके वे लोग आप को सीताजी को शीघ्र ही सौंप देंगे।"

अपनी सहायता के हेतु सुग्रीव ने जो प्रयत्न किये, उनका विवरण जानकर रामचन्द्रजी अत्यंत आनंदित हुए। फिर सुग्रीव से कहा–"सुग्रीव! मेरा विश्वास है कि मैं तुम्हारी सहायता से अवश्य अपने शत्रु का वध कर सकूंगा।"

उसी समय आसमान में बड़ी ऊँचाई तक धूल उठी। वानरों के दल आ-आकर जमा हो रहे थे। नदी तथा समुद्रों के तट पर और पहाड़ों में भी निवास करनेवाले वानरों की संख्या करोड़ों की है। उनमें कुछ वानर गोरे हैं, कुछ सफ़ेद हैं तो कुछ लोग भूरे रंग के हैं। ऐसे वानरों को साथ ले शतवली नामक वानर प्रमुख आ पहुंचा। स्वर्णिम देहवाला महावीर सुषेण था जो तारा का पिता था। वह करोड़ों वानरों को साथ ले आया। इसी भांति रुमा का पिता तार भी अधिक संख्या में वानरों को ले आया। हनुमान का पिता केसरी बाइस हज़ार वानरों के साथ आ पहुंचा। गवाक्ष तथा धूम्र दोनों वानर तथा भल्लूक सेनाओं के साथ आ पहुँचे। नील काले वानरों की सेना ले आया। गवय कुछ करोड़ों वानरों को साथ लाया। दरीमुख, मैंद, द्विविद तथा गज असंख्य वानरों को ले आये। जांबवान दस करोड़ भल्लूक योद्धाओं को ले आया। गंधमादन तथा अंगद भी बड़ी संख्या में वानरों को ले आये। कुल मिलाकर संसार भर के सभी वानर योद्धा किष्किंधा में पहुँच गये। उनके कोलाहल से सारा आकाश गूंज उठा।
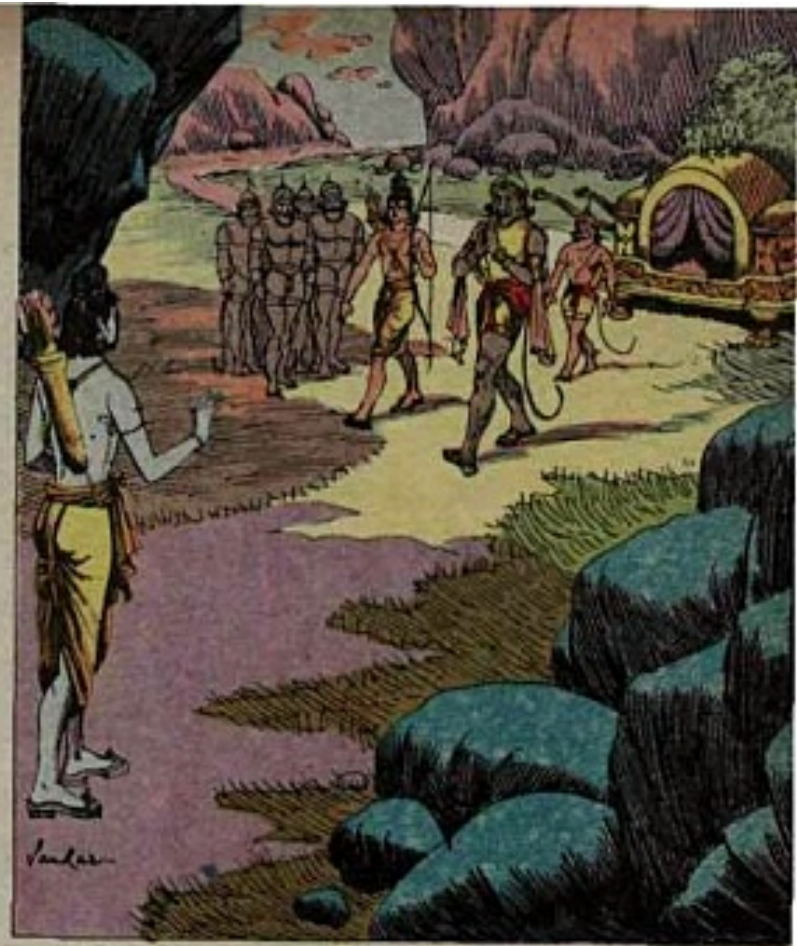
वानर प्रमुखों ने सुग्रीव के निकट पहुँचकर उसे प्रणाम किया। सुग्रीव ने उन सब को रामचन्द्रजी के हाथ सौंपकर

उन लोगों को आदेश दिया–"तुम सब अपनी अपनी सेनाओं को झरनों तथा वनों में ठहरा दो और उनके खान-पान आदि का उचित प्रबंध करो।"

इसके बाद सुग्रीव ने रामचन्द्रजी से कहा–"आप के आदेश का पालन करने के लिए करोड़ों की संख्या में वानर उपस्थित हैं। उनमें कामरूप भी हैं, पर्वतकायवाले तथा काम गमनवाले भी हैं। अत्यंत पराक्रमी भी हैं। आप अपनी इच्छा के अनुरूप इन्हें आदेश दे सकते हैं। मैं जानता हूँ कि इन वानर वीरों का क्या कर्तव्य है? फिर भी आप ही इनको आदेश दीजिए!"

रामचन्द्रजी ने प्रसन्नतापूर्वक सुग्रीव के साथ गले लगकर कहा–"सुग्रीव! पहले हमें यह मालूम करना चाहिए कि सीताजी जीवित हैं या नहीं? रावण कहाँ रहता है? यदि हमें यह मालूम हो जाय कि सीताजी जीवित हैं, इसके बाद हम दोनों मिलकर अपनी योजना बनायेंगे। इसलिए मेरे इन विचारों के अनुरूप तुम्हीं वानरों को आदेश दे दो।"

सुग्रीव ने एक पर्वतकाय वीर को जिस का नाम विनत था, निकट बुलाकर आदेश दिया कि वह एक लाख वानरों को साथ ले पूर्वी दिशा में जावे। वहाँ पर रावण के प्रदेश तथा सीताजी की खोज करने की आज्ञा दी। उन्हें एक मास तक लौट आने की अवधि दी।

इसी प्रकार सुग्रीव ने दक्षिण की ओर कुछ वानरों को भेजा। उनमें नील, हनुमान, जांबवान, सुहोत्र, शरारी, शरगुल्म, गज, गवाक्ष, गवय, ऋषभ, मैंद, द्विविद विजय, गंधमादन, उल्कामुख, अनंग, अंगद आदि प्रमुख योद्धा थे। उनके साथ वानरों की अपार सेना थी।

तदुपरांत सुग्रीव ने तारा के पिता सुषेण को असंख्य वानर वीरों के साथ पश्चिमी दिशा में भेजा, अब उत्तर की ओर शतवली नामक योद्धा को एक लाख वीरों की सेना सहित रवाना कर दिया।

अमर वाणी

न कर्ता कश्यचि, त्कश्चि
न्नियोगे चापि नेश्वरः,
स्वभावे वर्तंते लोकः,
तस्य कालः परायणम् ॥ ॥ १ ॥

[कोई किसी का कर्ता नहीं होता, कोई किसी को प्रेरणा देनेवाला समर्थ व्यक्ति नहीं होता, यह जगत स्वभाव के आधार पर चलता है । उसका प्रधान कारण काल या समय है ।]

न कालः काल मत्येति,
न कालः परिहीयते,
स्वभावम् च समासाद्य
न कश्चि दतिवर्तंते ॥ ॥ २ ॥

[काल स्वतंत्र होता है, वह किसी के अधीन नहीं होता, कोई उसका अतिक्रमण नहीं कर सकता ।]

न कालस्यास्ति बंधुत्वम्,
न हेतुर्न पराक्रमः,
न मित्रज्ञातिसंबंधः,
कारणम् नात्मनो वशः ॥ ॥ ३ ॥

[काल का कोई रिश्ता नहीं होता, मित्र तथा ज्ञाति के संबंध को वह स्वीकार नहीं करता । वह स्वतंत्र है ।]

काल

Photo by Prasad
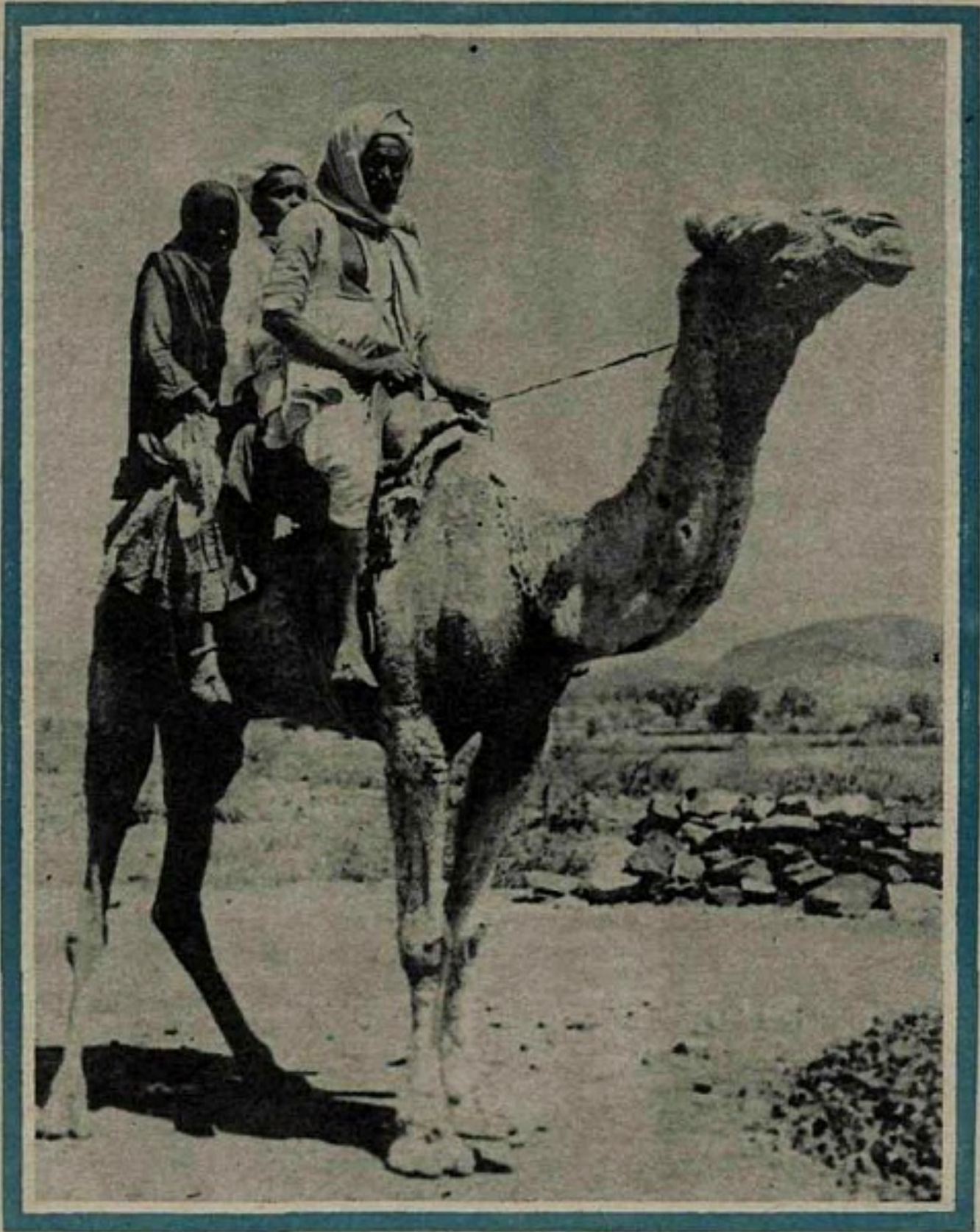
पुरस्कृत परिचयोक्ति

जैसी टाँगें, वैसी चाल

प्रेषक : विनोद कुमार दुबे

Photo by Bishan Maheshwari

द्वारा : श्रीराम प्रताप दुबे,
मिलटरी फार्म, इलाहाबाद-२

बोझा कितना-नहीं मलाल

पुरस्कृत
परिचयोक्ति

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २०)

★

★ परिचयोक्तियाँ मई १० तक प्राप्त होनी चाहिए। सिर्फ़ कार्ड पर ही लिख भेजें।

★ परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्द की हों और परस्पर संबंधित हों, पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ जुलाई के अंक में प्रकाशित की जायेंगी!

चन्दामामा

इस अंक की कथा-कहानियाँ-हास्य-व्यंग्य

मित्र-भेद	... २		महा मूर्ख	... ३६
विचित्र जुड़वाँ	... ५		अनोखी चीज	... ४०
तीन तीरंदाज	... १३		मूल्यों में अंतर !	... ४३
आजीविका	... २०		वीर हनुमान	... ४५
बोतल की करामात	... २८		अमर वाणी	... ५३
कपट भूत	... ३३		फोटो प्रतियोगिता	... ५६

दूसरा आवरण पृष्ठ: **प्रगैतिहासिक**

तीसरा आवरण पृष्ठ: **कलात्मक**

Printed by B. V. REDDI at The Prasad Process Private Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for Chandamama Publications, 2 & 3, Arcot Road, Madras-600026. Controlling Editor: 'CHAKRAPANI'

ठीक समय पर सही काम...

हाँ, पिताजी !

FOR THE GUMS

Photo by: **P. R. SHINDE**

ORNAMENTAL

मित्र-भेद